ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

बी.एड. पाठ्यक्रम

सत्र-2021-23

पाठ्यक्रम कोड : BEd - 012

द्वितीय सेमेस्टर

प्रथम पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या कोड : BEd- 021

पाठ्यचर्या का शीर्षक : संज्ञान, अधिगम एवं शिक्षण

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

द्वितीय सेमेस्टर : शिक्षा 021 – संज्ञान, अधिगम एवं शिक्षण

प्रधान संपादक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. अरबिंद कुमार झा
अधिष्ठाता, शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. गोपाल कृष्ण ठाकुर
सह. प्रो. शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री ऋषभ कुमार मिश्र
सहा. प्रो., शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. दीपक पुनसे
सह प्रोफ़ेसर
स्वालंबी शिक्षण महाविद्यालय,वर्धा

डॉ. रामार्चा पाण्डेय
सह. प्रो., शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. गुणवंत सोनोने
सहा प्रोफ़ेसर, शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री धर्मेंद्र शंभरकर
सहा प्रोफ़ेसर, शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

समन्वयक- श्री ऋषभ कुमार मिश्र

इकाई -1
डॉ. शिरीष पाल सिंह
श्रीमती शिल्पी कुमारी

इकाई -2
श्रीमती शिल्पी कुमारी
श्रीमती आर. पुष्पा नामदेव

इकाई -3
सुश्री सारिका राय शर्मा

इकाई -4
श्री ऋषभ कुमार मिश्र

शिक्षा021 :संज्ञान, अधिगम एवं शिक्षण

उद्देश्यः इसके द्वारा विद्यार्थी संज्ञान और सीखने के विभिन्न सिद्धांतों को जान सकेगें। वेइनके आधार पर सीखनेस करसिखाने के निर्माणवादी शिक्षाशास्त्रीय युक्तियों का विका-सकेगें। वे विद्यार्थियों में विविधता की प्रकृति की प्रशंसा कर सकेगें।

इकाई 1: सीखनाः अवधारणा और उपागमः सीखने की प्रक्रिया को निम्नलिखित उपागमों के सन्दर्भ समझनाः व्यवहारवाद, संज्ञानवाद, सूचना प्रसंस्करण सिद्धान्त, गेस्टाल्ट, सामाजिक निर्माणवाद।

इकाई 2: सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्यः वैयक्तिक निर्माणवाद और सामाजिक निर्माणवाद का विस्तृत अध्ययन, बुद्धि अवधारणा, मापन से जुड़े प्रश्न, बहुबुद्धि सिद्धान्त, सीखने के तरीके, स्मृति, प्रकृति, प्रकार, सांवेगिक, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक स्मृति, कार्यात्मक स्मृति (वर्किंग मेमोरी), विस्मरण के कारण, स्मृति बढ़ाने की युक्तियाँ।

इकाई 3: प्रेरणाः प्रेरणा की प्रकृति और प्रकार, आन्तरिक और बाहय प्रेरणा, प्रेरणा के उपागमः व्यवहारवादी, माननतावादी, संज्ञानवादी और सामाजिक सांस्कृतिक, रचनाशीलता का पोषण और समस्या समाधान कौशलों का विकास।

इकाई 4: मानव विविधताः विद्यार्थियों में वैयक्तिक भिन्नता, विविधता का सम्मान और पोषण, विभिन्न प्रकार की विविधता का समावेशनः विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी, प्रतिभाशाली और रचनाशील विद्यार्थी, सामाजिक दृष्टि से अपवंचितःस्ट्रीट चिल्ड्रेन, बाल श्रमिक, भावनात्मक दृष्टि से अस्थिर, इन सभी प्रकार के विद्यार्थियों से जुड़े प्रश्न, विशिष्ट आवश्यकताएँ और शिक्षा।

अनुक्रम

क्र.सं.	इकाईयों का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई 1: सीखना	7-25
2.	इकाई 2: सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य	26-50
3.	इकाई 3: अभिप्रेरणा	51-76
4.	इकाई 4: मानव विविधता	77-101

प्रधान संपादक की कलम से.....

संपादक की कलम से.....

इकाई -1. सीखना

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सीखने की परिभाषाएँ
1.4. सीखने की प्रकृति
1.5 सीखने के सिद्धान्त
1.5.1 सीखने के प्रमुख व्यवहारवादी सिद्धान्त
1.5.1.1 थार्नडाइक का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
1.5.1.2 पावलॉव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त
1.5.1.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त
1.5.2 सीखने के संज्ञानवादी सिद्धान्त
1.5.2.1. सीखने का समग्राकृति (गेस्टाल्ट) सिद्धान्त
1.6. सारांश
1.7 . अभ्यास प्रश्न
1.8 . सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1. प्रस्तावना

'सीखना' अथवा 'अधिगम' एक निरन्तर चलने वाली सार्वभौमिक प्रक्रिया है। व्यक्ति जन्म से सीखना प्रारम्भ कर देता है तथा मृत्यु पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। वस्तुतः सीखने की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति कहीं भी, किसी भी परिस्थिति, किसी से भी, किसी भी समय, कुछ भी सीख सकता है। सीखने के फलस्वरुप ही मानव अपने व्यवहार का परिष्कार करता है। सीखना या अधिगम प्रक्रिया तथा परिणाम दोनों के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रकिया के रुप मे अधिगम सीखने वाले के अनुभवों, उसकी आन्तरिक तथा बाह्य क्रिया तथा उसकी अपनी परिस्थिति के प्रति क्रियाओं का उल्लेख करता है। प्रक्रिया के परिणाम के रुप में अधिगम व्यवहार परिवर्तनों का उल्लेख करता है। ये व्यवहार परिवर्तन स्थाई एवं अस्थाई दोनों प्रकार के हो सकते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन आपको निम्नलिखित अवसर देगा-

1. आप सीखने का अर्थ समझ सकेंगे।
2. आप सीखने को परिभाषित कर सकेंगे।

3. आप सीखने के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. आप सीखने के विभिन्न नियमों को समझ सकेंगे।

1.3. सीखने की परिभाषाएँ

क्रियाकलाप 1:
आप कुछ वर्षों से एक शिक्षक के रूप में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से जुड़े हुए हैं। अपने अनुभव के आधार पर बताइए कि सीखना क्या होता हैं?

नीचे सीखने की कुछ परिभाषाएं दी गयी हैं। इनकों पढ़कर विचार कीजिए कि सीखना क्या है और आपने जो परिभाषा दी है उससे इन परिभाषाओं की तुलना कीजिए।

हेनरी स्मिथ के अनुसार, ‘‘अनुभव के प्रतिफल के रुप मे नए व्यवहार का अर्जन अथवा पुराने का सुदृढीकरण या निर्बलीकरण अधिगम है।’’

(“Learning is the acquisition of new behaviour or the strengthening or weakning of old behaviour as the result of experience”)

गेट्स के अनुसार, ‘‘अनुभव तथा प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार का उन्नयन अधिगम है।’’

(“Learning is the modification of behaviour through experience and training.”)

किम्बले के अनुसार ‘‘पुनर्बलित अभ्यास के फलस्वरुप व्यवहारजन्य क्षमता में जाने वाले अपेक्षाकृत स्थाई प्रकृति का परिवर्तन अधिगम है।’’

“Learning is a relatively permanent change in behavioural potentiality that occurs as a result of reinforced practices”

वुडवर्थ के अनुसार, ‘‘नवीन ज्ञान एवं अनुक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया, अधिगम प्रक्रिया कहलाती है।’’

“The process of acquiring new knowledge and responses is the process of learning”

स्निकर के अनुसार, ‘‘अधिगम व्यवहार में उतरोत्तर सामजस्य की प्रकिया है।’’

“Learning is a process of progressive behaviour adaptation”

-Skinnerand

Crow

क्राँनबैक के अनुसार, ‘‘अधिगम अनुभव के परिणामस्वरुप व्यवहार-परिवर्तन द्वारा प्रदर्शित होता है।’’

"Learning is shown by a change in behaviour as a result of experience"
जे.पी. गिलफोर्ड के अनुसार, "व्यवहार में परिवर्तन अधिगम है।''
"Any change in behaviour is a learning"
उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि-

1. अधिगम कोई परिणाम न होकर प्रकिया है।
2. अधिगम सदैव उद्देश्यपूर्ण होता है।
3. अधिगम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसमें मानव व्यवहार के सभी क्षेत्र, यथा- ज्ञानात्मक, भावात्मक, तथा क्रियात्मक समाहित रहते है।
4. अधिगम व्यवहार परिवर्तन की प्रकिया है।
5. अधिगम की प्रकिया सार्वभौमिक होती है।
6. अधिगम लगभग स्थाई प्रकार का व्यवहार परिवर्तन है।
7. अधिगम अभ्यास, प्रशिक्षण तथा अनुभव पर आधारित होता है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए –

1. अधिगम को परिभाषित कीजिए .

....
....

1.4. सीखने की प्रकृति (Nature of Learning)

सीखना एक मनोवैज्ञानिक प्रकिया है। सीखने की अनेक परिभाषाएँ दी गयी है तथा अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। इसके आधार पर सीखने की प्रकृति की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है-

1) सीखना प्रकिया तथा परिणाम है - अधिगम प्रकिया द्वारा छात्र नए अनुभवों, व्यवहारों, तथा प्रत्ययो को अर्जित करता है। यह अधिगम के परिणाम भी माने जाते हैं।

2) व्यवहार परिवर्तन सीखना है - क्रियाओं तथा अनुभव से जो व्यवहार परिवर्तन होता है, उसे अधिगम की संज्ञा दी जाती है।

3) सीखना मानव की प्रकृति है - मानव के वस्तुओं के सम्बध के बारे में जानने की उत्सुकता रहती है। क्या? तथा क्यों? प्रश्नों के उत्तर को जानने की इच्छा रहती है। इसी जानकारी को अधिगम कहते हैं।

4) सीखना मानसिक क्षमताओ की एक प्रक्रिया है- ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का ज्ञान अधिगम प्रकिया द्वारा किया जाता है। अधिगम के यही तीन उद्देश्य है।

5) सीखना एक सामाजिक प्रक्रिया भी है - बालक समाज, परिवार तथा अपने बड़ों के कार्यों को देखकर, समाज की अनेक बातों को सीख लेता है, जिसे सामाजिक अधिगम (Social Learning) कहते है। अधिगम प्रत्यक्षीकरण तथा अनुकरण द्वारा होता है।

6) सीखना एक समायोजन की प्रक्रिया है - अधिगम से समायोजन की क्षमताओं का विकास होता है। व्यक्ति अपने ज्ञान से परिस्थिति से समायोजन जल्दी कर लेता है।

7) सीखना एक समस्या समाधान की प्रक्रिया है - जीवन की समस्याओं का समाधान व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों की सहायता से करता है। पूर्व अनुभव व्यक्ति का अनुभव होता है। अधिगम समस्या-समाधान में सहायक होता है।

1.5 सीखने के सिद्धान्त (Theories of Learning)

सीखना व्यवहार का महत्वपूर्ण एवं आवश्यक पक्ष है। पशुओं में सीखने की प्रक्रिया मानव में सीखने की प्रक्रिया से अपेक्षाकृत सरल होती है। अतएव मनोवैज्ञानिकों ने पशुओं पर शोध करके यह जानने का प्रयास किया है कि सीखने के वास्तविक स्रोत क्या हैं ? तथा इससे प्राप्त किए गए तथ्यों के आधार पर कुछ अधिगम सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। सीखने के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं-

- थार्नडाइक का प्रयास व त्रुटि का सिद्धान्त (Trial and Error Theory of Thorndike)
- पावलॉव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त (Classical Conditioning Theory of Pavlov)
- स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Skinner's Operant Conditioning Theory
- हल का प्रबलन सिद्धान्त (Hull's Reinforcement Theory)
- अधिगम का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त (Insight Theory of Learning)
- लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त (Lewin's field Theory)
- बन्दुरा का सामाजिक अधिगम सिद्धान्त (Bandura's Theory of Social Learning)

उपरोक्त सिद्धान्तों में से अधिगम के चार प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा आगे की गई है-

1.5.1 सीखने के प्रमुख व्यवहारवादी सिद्धान्त

1.5.1.1 थार्नडाइक का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त (Trial and Error Theory of Thorndike)

1. प्रस्तावना (Introduction)

एडवर्ड एल. थार्नडाइक (1874-1949) के अधिगम के सिद्धान्त को कई नाम दिए गए हैं-

- उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्त (Stimulus Response Theory)
- संयोजनवाद (Connectionism)
- सम्बद्धता का सिद्धान्त (Bond Theory of Learning)
- प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त (Trial and Error Theory of Learning)

इनके साथ ही थार्नडाइक ने सीखने के नियमों के बारे में चर्चा की है। इन्होंने सीखने के नियमों को दो भागों में विभक्त किया-

1. मुख्य नियम
2. गौण नियम
3. मुख्य नियमों में तीन नियम हैं-
4. तैयारी का नियम (Law of Readiness)
5. अभ्यास का नियम (Law of Exercise)
6. प्रभाव का नियम (Law of Effect)।

इसी प्रकार इन्होंने गौण नियम भी बताए हैं-

1. बहुविधि अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)
2. मानसिक स्थिति, अभिवृत्ति का नियम (Law of Mental Set of Attitude or Disposition)
3. आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial activity of Prepotency of Elements)
4. आत्मीकरण या समानता का नियम (Law of Assimilation or Analogy)
5. साहचर्य परिवर्तन का नियम Law of Associative Shifting or Shifting of Association)
6. थार्नडाइक ने 1898 में अपनी पुस्तक 'Animal Intelligence' में अधिगम सिद्धान्त प्रस्तुत किया, बाद में 1913 में अपनी पुस्तक 'Educational Psychology' में इन्होंने अधिगम सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट किया।
7. थार्नडाइक ने पशुओं तथा मानवों पर परीक्षण किए हैं। इनके प्रयोगों में कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, मछली सम्मिलित रहे। इन प्रयोगों के निष्कर्षों को उन्होंने प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त माना।

2. थार्नडाइक का प्रयोग (Experiment of Thorndike)

एक भूखी बिल्ली को एक पिंजरे में बंद किया। इस पिंजरे में एक ऐसा लीवर लगा था, जिसे दबाने से पिंजरे का दरवाजा खुल जाता था। बिल्ली भूखी थी। पिंजरे के बाहर उसका भोजन मछली थी। भोजन देखकर बिल्ली भोजन प्राप्त करने के लिए प्रयास करने लगी। बहुत प्रयास करने पर उसका पैर लीवर पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया। आगे के प्रयोगों में प्रयासों की सख्या में कमी आने लगी तथा बिल्ली लीवर को दबाकर दरवाजा खोलना सीख गई।

इस प्रयोग की व्याख्या थार्नडाइक ने इस प्रकार की "अधिगम सम्बन्ध स्थापित करना है तथा सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य मस्तिष्क करता है।" थार्नडाइक की धारणा है कि अधिगम की क्रिया में शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं में सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध विभिन्न उद्दीपकों और विशिष्ट प्रतिक्रियाओं के कारण स्नायु मण्डल में होता है। यह सम्बन्ध स्थापन अधिगम क्रिया में आवश्यक शर्त है। यह सम्बन्ध अनेक प्रकार का हो सकता है।

थार्नडाइक के प्रयोग में बिल्ली द्वारा बार-बार गलतियाँ हुई और उनके सुधारने के प्रयास किए गए। इसलिए इसे 'त्रुटि और प्रयास', Trial and Error भी कहा जाता है। अपने प्रयोगों के आधार पर थार्नडाइक ने सीखने के जो मुख्य तथा गौण नियम प्रस्तुत किए उनकी जानकारी यहाँ प्रस्तुत है।

(1) तत्परता का नियम

तत्परता के नियम से अभिप्राय है कि जब प्राणी किसी कार्य को करने के लिए तैयार रहता है तो उसे सीखने में आनन्द आता है और वह उसे शीघ्र सीख लेता है। जिसे करने के लिए वह तैयार नहीं होता और उसे उस कार्य को करने के लिए बाद्ध किया जाता है तो कार्य करने में उसे झुंझलाहट आती है, जिससे वह उस कार्य को सीख नहीं पाता। तत्परता से कार्य करने में ध्यान एकाग्र होता है।

(2) अभ्यास का नियम

थार्नडाइक के अभ्यास का नियम का अभिप्राय उपयोग के नियम से लिया जाता है परन्तु थार्नडाइक ने इसे अनुपयोग के नियम से लिया है, जिसका अर्थ यह है कि जब हम किसी सीखी गई क्रिया का कोई उपयोग नहीं करते तो उसे भूल जाते है। थार्नडाइक ने पहले क्रिया को बिना समझते करने पर बल दिया था, परन्तु बाद में उनके विचारों में परिवर्तन आ गया और उन्होंने प्रयास अर्थ समझे तथा सीखने के संकेतों की ओर ध्यान दिया तथा इन्हें भी अभ्यास के नियम में सम्मिलित किया।

(3) प्रभाव का नियम

किसी कार्य को करने पर यदि सन्तुष्टि प्राप्त होती है तो उद्दीपन-अनुक्रिया का सम्बन्ध सुदढ होता है और यदि सन्तोष नही मिलता तो उद्दीपन-अनुक्रिया का सम्बन्ध निर्बल होता है। परन्तु बाद में थार्नडाइक ने स्वयं ही अपने नियम में परिवर्तन करके कहा कि उद्दीपन-अनुक्रिया की सम्बध्दता पर असन्तोष का प्रभाव नहीं पड़ता वरन आवृत्ति अर्थात बारम्बारता तथा अभिनवता का प्रभाव पडता है

अधिगम के गौण नियम

थार्नडाइक ने पाँच गौण नियम भी प्रस्तुत किए, जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है-

[i] **बहु प्रतिक्रिया नियम** (Law of Multiple Response)- भूखी बिल्ली ने मछली प्राप्त करने के लिऐ अनेक प्रयास किए, अन्त में लीवर दबा कर पिजंरे का द्वार खोलना सीख लिया। प्रयत्न तथा भूल का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है।

[ii] मानसिक विन्यास का नियम (Law of Mental Set)- अधिगम मानसिक विन्यास पर भी आधारित होता है। मानसिक विन्यास में सीखना सीखने वाले व्यक्ति की अभिवृति पर भी आधारित होता है। यदि व्यक्ति सीखने के लिऐ तैयार है तो शीघ्र सीख लेगा, यदि सीखने के लिऐ तैयार नहीं है तो वह या तो देर से सीखेगा या फिर सीखेगा ही नहीं।

[iii] अपूर्ण क्रिया का नियम (Law of Partial Activity or Law of Prepotency of Elements)- थार्नडाइक का मानना है की कार्य को छोटे-छोटे टुकडों में बाँटकर सीखने से सीखने की गति तीव्र होती है। अंश से पूर्ण की ओर (From Part to Whole) सीखने का नियम इसी पर आधारित है।

[iv] साम्यानुमान का नियम (Law of Analogy)- इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी नई समस्या पर वही प्रतिक्रिया करता है, जो कि उसने पहले भी समस्या को समान परिस्थिति में की होती है। शिक्षण सूत्र 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' इस का उदाहरण है।

[v] साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Association Shifting)- पशुओं के प्रशिक्षण में इस नियम को हम प्राय: देखते रहते है। कुत्ते को कोई **खाद्य** पदार्थ दिखाकर पीछे के पैरों पर खड़ा होना सिखा देते है। बाद में पह चुटकी बजने से ही पीछे के पैरों पर खडा होना शुरु हो जाता है, ऐसा ही कार्य थार्नडाइक ने मछली दिखाकर बिल्ली को पीछे के पैरों पर खड़ा होना सिखाया था। बाद में वह बिल्ली खड़ी हो कहने पर ही पीछे के पैरों पर खडी हो जाया करती है। इसे साहचर्य परिवर्तन कहते है।

3. उद्दीपन-अनुक्रिया सम्बद्ध सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ

इस सिद्धान्त के निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थ हैं-

1. सीखने वाले की सक्रियता पर बल, यदि सीखने वाला निष्क्रिय है तो सीखने की क्रिया कम होगी अथवा नहीं हो पायेगी। सक्रियता बनाये रखने के लिए करके सीखने तथा समूह परिचर्चा पर बल देना चाहिए।
2. अध्यापन कार्य करने के पहले छात्र को उत्प्रेरित करना चाहिए ताकि सीखने की क्रिया में वह सक्रिय रह सके।

3. कौशलों के सीखने के लिए अभ्यास करना महत्वपूर्ण है। सही उच्चारण के लिए, सुलेख के लिए तथा वर्तनियों की शुद्धता पर अभ्यास के माध्यम से दिया जाना उपयोगी रहता है। ध्यान रखना चाहिए कि भाषा व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।
4. विषयवस्तु को छोटे-छोटे हिस्सों में विभाजित करके शिक्षण करना प्रभावी रहता है। अभिक्रमित अधिगम का महत्तवपूर्ण भाग छोटे पदों का सिद्धान्त है।
5. शिक्षण से पूर्व पाठ की महत्वपूर्ण बातें तथा बाद में पुनरावृत्ति अवश्य करनी चाहिए। शिक्षण के बाद गृह-कार्य दिया जाना पुनरावृत्ति को बल प्रदान करता है। थोड़े-थोड़े समय बाद परीक्षा के माध्यम से बच्चों को पुनरावृत्ति करने के लिए अवसर प्रदान करते हैं।
6. अध्यापकों को चाहिए कि वह अधिगमकर्ताओं को एक सुखद अनुभव प्रदान करें। सिखाना तनावपूर्ण या दु:खद अनुभूति करने वाला नहीं होना चाहिए।
7. बच्चों को प्रोत्साहन देना शिक्षण का एक आवश्यक अंग बनाना चाहिए।
8. कई बार अध्यापक दण्ड के माध्यम से शिक्षण कार्य करते देखे गए हैं। दण्ड देना अध्यापक के मानसिक असन्तुलन, अक्षमता, कुंठाओं से ग्रस्त होने का प्रतीक है। जबकि छात्रों को प्रेमपूर्वक प्रोत्साहन देकर पढ़ाना उसके उच्च चरित्र, शिक्षण अभियोग्यता, उच्च मानसिक रूप से स्वस्थ होने का प्रतीक है।
9. बच्चों की योग्यताओं, अभिक्षमताओं तथा व्यवहार में वैयक्तिक विभेद होते हैं, जिनके कारण बच्चे स्वगति से सीखते हैं। प्रत्येक बच्चे में एक से अधिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। अध्यापक को उन विशेषताओं को खोज कर बच्चों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास में उपयोग करना चाहिए।
10. प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त हमें यह शिक्षा देता है कि प्रयास की संख्याओं में कमी करने के लिए अध्यापक उचित संकेत (Clue) प्रदान करे। संकेत इतने स्पष्ट न हो कि उनका पालन करते ही छात्र को तुरन्त समस्या का समाधान मिल जाए। बल्कि ऐसे होने चाहिए कि अधिगमकर्त्ता को कुछ प्रयास करना आवश्यक हो जाए ताकि उसमें आत्मविश्वास का उदय हो। साथ ही समस्या समाधान के लिए क्रमबद्ध तरीके विकसित करने की योग्यता का विकास करना आवश्यक है।
11. सफलता की अनुभूति कराना बहुत आवश्यक है। अत: कक्षा में छात्रों को प्रेरित करने के लिए पिछड़े बालकों से सरल प्रश्न पूछने चाहिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए –

1. थार्नडाइक **के सिद्धान्त के अनुसार सीखने के नियम कौन कौन से हैं ?**

....

....

1.5.1.2 पावलॉव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त (Classical Conditioning Theory of Pavlov)

रूस के शरीर क्रिया विज्ञानी ईवान पी. पावलव (Evan P. Pavlov) ने शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनकी रुचि पाचन प्रक्रिया में पेट में होने वाले विभिन्न पाचक स्रावों के अध्ययन में थी। इनके अनुसंधानों की उपयोगिता को देखते हुए इन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अधिगम के सम्बन्ध में इनके अध्ययन शास्त्रीय अनुबन्ध या सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त (Conditioned ResponseTheory) परम्परागत अनुबन्धन सिद्धान्त आदि कहते हैं। शास्त्रीय अनुबन्ध सिद्धान्त अधिक उपयुक्त एवं सटीक नाम है।

भोजन खाते समय मुँह में लार आना एक प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex action)या सहज क्रिया है। परन्तु भोजन से सम्बन्धित अन्य घटनाओं से मुँह में लार आना एक अधिगम अनुक्रिया है पावलव ने इस क्रिया को अनुकूलित प्रतिवर्ती क्रिया (Conditioned Reflex Action) नाम दिया।

2. पावलव का प्रयोग

पावलव ने अपने प्रयोग के लिए कुत्तों का उपयोग किया इन्होंने कुत्तों को प्रयोग कार्य लिए पहले से प्रशिक्षित कर लिया था,ताकि वे प्रयोगशाला में मेज पर खड़े रहने में सहज अनुभव करें। इसके बाद पावलव ने कुत्ते के निचले जबड़े में शल्य क्रिया करके एक छेद बनाया जिसके द्वारा लार ग्रन्थि की वाहिनी (Duct) का सम्बन्ध एक नली से कर दिया। ताकि लार ग्रन्थि से निकलने वाले रस की एक-एक बूँद शीशे की नलिका में एकत्रित होती रहे। इस नलिका का सम्बन्ध एक स्वचालित यंत्र से था जो कि किसी समय विशेष पर निकली लार की मात्रा का मापन करती रहती थी अर्थात् लार की मात्रा का मापन स्वत: रिकार्ड होता रहता था। कुत्ते को दिए जाने वाले भोजन का प्रबंध भी स्वचालित था। निश्चित समयावधि के बाद कुत्ते को निर्धारित मात्रा में भोजन मिलता था।

इस सारी व्यवस्था में एक व्यवस्था यह भी की हुई थी कि भोजन मिलने से कुछ समय पहले एक विद्युत घण्टी बजती थी। इसके बाद भोजन-पात्र में भोजन आता था। घण्टी तथा भेजन का यह क्रम बार-बार दोहराया गया। इसके बाद केवल घण्टी की आवाज से कुत्ते के लार का स्रवन होने लगा।

घण्टी की ध्वनि और भोजन को उत्तरोत्तर प्रयासों से जुड़कर लार के स्त्राव की मात्रा बढ़ने लगी। तीसरे प्रयास में 60 बूंद हो गई, जबकि समय पहले की अपेक्षा कम लगा मात्र 2 सैकण्ड का समय ही लगता था। इसके बाद घण्टी बजने पर भोजन नहीं दिया गया लेकिन लार के स्त्रावित होने की क्रिया होती रही।

इस प्रयोग से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अस्वाभाविक उद्दीपन के प्रति स्वाभाविक अनुक्रिया का होना अनुबन्धित अनुक्रिया कहलाती है।

जे.पी. गिलफोर्ड ने इस प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार की है-

"जब दो उद्दीपक एक साथ दिए जाते हैं जिनमें एक वास्तविक उद्दीपक होता है तथा दूसरा कृत्रिम उद्दीपक, कृत्रिम उद्दीपक भी उतना ही प्रभावी होता है जितना कि वास्तविक उद्दीपक।"

उद्दीपक और अनुक्रिया के सम्बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है-

अनुबन्धन से पूर्व

स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) ⟶ स्वाभाविक अनुक्रिया (लार टपकना)

अस्वाभाविक तथा स्वाभाविक उद्दीपक (घण्टी तथा भोजन) ⟶ स्वाभाविक अनुक्रिया (लार टपकना)

अनुबन्धन के बाद

अस्वाभाविक उद्दीपक (केवल घण्टी) ⟶ स्वाभाविक अनुक्रिया (लार टपकना)

3. शास्त्रीय अनुबन्ध सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ

शास्त्रीय अनुबन्ध सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ इस प्रकार हो सकते हैं-

- छात्रों को पाठ्यक्रम सहभागी तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी कार्यों के लिए दिए जाने वाले कार्यों के लिए पुरस्कार तुरन्त (तत्क्षण) दिए जाएं ताकि उसमें अच्छाइयाँ बढें।
- गृहकार्य आदि के माध्यम से सुलेख, वर्तनी की शुद्धता का विकास किया जाए।
- बच्चे प्राय: अनुचित माँग करते रहते है वे अनुचित माँगों के लिए रोना, फर्श पर लेटना, हाथ पैर पीटना, अतिथियों के सामने अपनी मांग प्रस्तुत करना आदि हथकण्डे अपना कर अपनी मांग पूरी कराने का प्रयास करते है। कई बार बच्चे स्कूल जाने से ठीक पहले अनुचित रुप से जेब खर्च आदि की मांग करते हैं। कुछ बच्चे शिक्षण सामग्री को खरीदने का बहाना बनाकर

अनुचित रुप से धन की माँग करते है। यदि अभिभावक उनके रोने आदि क्रियाओं से आगन्तुकों आदि के सामने उनकी माँग की पूर्ति कर देते है तो उनकी माँग करने की विधि को बल मिलता है और यह आदत बलवती हो जाती है।

- ऐसी परिस्थितियों में बालक को स्पष्ट रूप से बता दिया जाएं कि तुम्हारी यह माँग अनुचित है इसे हम पूरा नहीं करेंगे या तुम्हारी इस मरह माँग करना अनुचित है जिससे बच्चा स्थिति को ठीक प्रकार समझ जाए। आगे व इस प्रकार का व्यवहार नहीं करेगा। पूर्व में पड़ चुकी आदतों को असम्बद्ध करने के लिए यथोचित तरीके अपनाए जाने चाहिए।
- कई बार बच्चे किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति से भय ग्रस्त हो जाते है। भयग्रस्तता को दूर करने का तरीका कई बार उचित नहीं होता। जिससे बच्चे के मन में अनुचित ग्रन्थियों का विकास हो जाता है। भयग्रस्तता को अपनी समझ न देखकर उसका हँसी-मजाक न उड़ाकर उसके भय को दूर करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि बच्चे के भय को उसी के दृष्टि से देखें तथा सोच-विचार कर उचित विचार कर उचित निर्णय लें। उदाहरण के लिए एक बच्चे के मन में अध्यापकों के अनुचित व्यवहार तथा परीक्षा में कम अंक आने से गणित विषय के प्रति अनुचित भय का उदय हो गया है। गणित के अध्यापक के प्रति उसके व्यवहार में परिवर्तन आवश्यक है। यह गणित के अध्यापक के मित्रतापूर्वक व्यवहार से अत्यन्त सरल कार्य है। लगातार यह कहते रहना भी लाभकारी होगा कि गणित एक सरल विषय है। उसी की सरलता का उदाहरण देते रहें तथा शिक्षण के लिए ऐसी विधियों का चयन करें जिससे उसे गणित की कठिन लगने वाली समस्या अत्यन्त सरल लगने लगे। प्रयासों के लगातार उपयोग से गणित के प्रति उसकी अभिरूचि का विकास होगा।
- कई बार बच्चों में बुरी आदतों का निर्माण हो जाता है यह सम्बन्ध द्वारा दूर किए जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में स्वविवेक का उपयोग करना तथा उनकी सलाह से परिवार के समस्त सदस्यों को केस के प्रति अपने व्यवहार में परिवर्तन करना होता है।

1.5.1.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Skinner's Theory of Operant Conditioning)

1. प्रस्तावना

बी.एफ. स्किनर ने 1930 से अपने अनुसंधान प्रारम्भ किए। सन् 1938 में उनकी पुस्तक 'Behavior of Animals' प्रकाशित हुई। इसके बाद सन् 1953 में उनकी पुस्तक 'Science of Human Behavior' प्रकाशित हुई। इनके सिद्धान्त वर्णनात्मक व्यवहारवाद पर आधारित हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त को **क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त** कहा गया, जिसे हिन्दी में क्रिया

प्रसूत या सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त या अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त कहते हैं। स्किनर ने अपने प्रयोग कबूतरों पर किए। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

कबूतरों का प्रयोग

स्किनर ने कबूतरों के लिए संयंत्र का निर्माण किया। इस संयंत्र में एक ओर वह आराम से रह सकता था तथा दूसरे हिस्से में यांत्रिक प्रक्रिया लगी थी। इस संयंत्र में एक ऐसा स्थान था, जहाँ पर चोंच मारने पर उसे एक अनाज का दाना प्राप्त होता था। कबूतरों को गर्दन उठाकर दायीं ओर घूम कर चोंच मारनी होती थी, जिससे उसे दाना प्राप्त होता था। कबूतरों ने यह प्रकिया सीख ली। इस संयंत्र में लाने से पूर्व कबूतरों को भूखा रखा गया था।

ठीक इसी प्रकार स्किनर ने चिडिया को टेबल टैनिस खेलनी सिखाई। उस प्रयोग में पिंगपोग बॉल तथा नैट आदि चिड़िया के अनुकूल आकार के थे। इसी प्रकार उसने कबूतरों को गेंद से खेलना भी सीखा दिया।

पुनर्बलन

किसी क्रिया के तुरन्त पश्चात् कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपन प्राप्त हो जाता है तो उस क्रिया कि शक्ति में वृद्धि हो जाती है। स्किनर दो प्रकार के पुनर्बलन को मानते हैं-

- सकारात्मक पुनर्बलन
- नकारात्मक पुनर्बलन

सकारात्मक पुनर्बलन सन्तुष्टि प्रदान करता है। स्किनर के प्रयोग सकारात्मक पुनर्बलन से अधिक सम्बन्धित है। सकारात्मक पुनर्बलन एक ऐसा उद्दीपक है, जो क्रिया प्रसूत अनुक्रिया के होने की क्रिया को बढाने में सहायक होता है। यदि उसे किसी क्रिया के साथ जोड़ दिया जाए, जैसे- खाना, पीना, धन-दौलत, मान-सम्मान, प्रशंसा एवं सामाजिक मान्यता आदि। नकारात्मक पुनर्बलन में प्राणी प्रस्तुत किए गए उद्दीपन से बचाव चाहता है, जैसा-कि पशुओं को प्रशिक्षित करते समय प्रशिक्षक नकारात्मक उद्दीपन प्रदान करते रहे है। इस क्रिया में मारने-पीटने के अलावा बिजली का झटका, तीव्र प्रकाश, तीव्र शोर, अति गर्म, अति ठण्डा आदि करते हैं। चूहा यदि गलत रास्ता अपनाता है तो उसे विद्युत का झटका लगता है, जिससे वह उचित रास्ता अपनाने का बाध्य होता है।

पुनर्बलन अनुसूची

पुनर्बलन का आयोजन करने के लिए स्किनर ने एक अनुसूची प्रस्तुत की कि पुनर्बलन अनुक्रिया के पश्चात् कितने समय में दिया जाए। स्किनर की अनुसूची निम्नलिखित प्रकार है-

1. **निश्चित अनुपात अनुसूची-** इस अनुसूची में यह तय रहता है कि कितनी बार सही क्रिया करने पर पुनर्बलन दिया जाए। जैसे कि चार बार सही क्रिया करने पर एक बार पुनर्बलन देना।

2. **निश्चित अन्तराल अनुसूची** – इस अनुसूची में निश्चित समयान्तराल के बाद पुनर्बलन दिया जाता है। समयान्तराल परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करता है। वह मिनट, घण्टा, दिन, महीना, कुछ भी हो सकता है। उदाहरण के लिए चूहे को प्रत्येक 3 मिनट बाद भोजन देना।
3. **आंशिक अनुसूची** – इस अनुसूची में कुछ निश्चित नहीं होता कि कब पुनर्बलन दिया जाए। पुनर्बलन किसी भी समय, किसी भी समयान्तराल पर दिया जा सकता है।

स्किनर के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ -

स्किनर के सिद्धान्त के निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थ हैं-

1. बी.एफ. स्किनर के सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण शैक्षिक निहितार्थ यह है कि इन्होंने अपने सिद्धान्त के आधार पर 1945 में रेखीय अभिक्रमित अधिगम सामग्री तथा शिक्षण मशीनों का निर्माण किया। ये दोनों ही अधिगम पद्धति शत-प्रतिशत अधिगम की गारण्टी देती है। अभिक्रमित अधिगम में प्रतिपुष्टि तुरन्त दी जाती है। यह अधिगमकर्ता को निरन्तर सक्रिय बनाये रखती है। छोटे पदों को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। छात्रों को स्वगति से अध्ययन करने का अवसर उपलब्ध कराती है। उद्देश्य स्पष्ट होते हैं। यह एक छात्र-केन्द्रित विधि है।
2. परिणाम की जानकारी तुरन्त कर देने से अधिगम कार्य तीव्र गति से होता है। अत: विद्यालयों में परीक्षा के अंक तथा अन्य पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के परिणाम तुरन्त बताए जाते हैं.
3. उद्देश्य आधारित शिक्षण पर बल दिया जाने लगा है। स्किनर से पहले केवल सामान्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही शिक्षण किया जाता है। अब विभिन्न शैक्षिक पक्षों, जैसे- ज्ञान, भाव
4. तथा क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर शिक्षण करने की विधि का श्रीगणेश हुआ है।
5. छात्रों को शिक्षित करते समय उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे वे स्वगति से मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर सकें।
6. स्किनर ने बताया कि प्राणी अपनी गति के अनुसार अध्ययन करते हैं। प्रत्येक छात्र की अपनी क्षमता होती है, जिससे व्यक्तिगत विभेदों के आधार पर शिक्षण किया जाना उचित और उपयोगी है।
7. गृहकार्य के मूल्यांकन तथा शोधन का कार्य यथा शीघ्र किया जाना चाहिए तथा त्रुटियों की जानकारी तुरन्त दिया जाना बहुत आवश्यक है। गृहकार्य पर दिए जाने वाली आख्या सुन्दर, बहुत सुन्दर, श्रेष्ठ आदि, बालकों की अध्ययन में विशेष रूचि विकसित करती है।
8. छात्रों के साथ, अध्यापकों का व्यवहार प्रेरणात्मक होना चाहिए।
9. शारीरिक, शाब्दिक दण्ड ही नहीं बल्कि अध्यापक के चेहरे की भाव-भंगिमा भी अधिगमकर्त्ता को प्रभावित करती है। शारीरिक शाब्दिक दण्ड तो देने की नहीं चाहिए। अध्यापक अपने चेहरे के नाराजगी पूर्ण प्रदर्शन पर भी नियंत्रण करे तथा छात्रों के समक्ष प्रसन्नचित्त दिखाई दे।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए –

1. शास्त्रीय अनुबन्धन एवं क्रिया प्रसूत अनुबन्धन में क्या अंतर हैं?

....

....

1.5.2.सीखने के संज्ञानवादी सिद्धान्त

1.5.2.1.सूचना प्रसंस्करण सिद्धान्त

सूचना प्रसंस्करण सिद्धान्त बताता है कि मानव मस्तिष्क संगणक की तरह कार्य करता है। संगणक की तरह यह सूचना ग्रहण करता है, इस पर कार्य करता है, इसके प्रकार तथा विषय-वस्तु को परिवर्तित करता है, सूचना का संग्रह करता है, इसे पुनः प्राप्त करता है तथा इसके लिए उत्तर देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है. इस प्रक्रिया में मस्तिष्क संगणक की तरह सूचना को एकत्रित करता है तथा इसे पूर्व ज्ञान के सन्दर्भ में संगठित करता है। यह प्रक्रिया संकेतीकरण (Encoding) कहलाती है। सूचना को संग्रहित करने की प्रक्रिया संग्रहण (Storage) कहलाती है। सूचना को पुनः प्राप्त करने की प्रक्रिया, जब आवश्यकता होती है, पुनःप्राप्ति (retrieval) कहलाती है। इस पूरे तंत्र का निर्देशन नियंत्रण प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है जो यह निर्धारित करता है कि कब और कैसे सूचना इस तंत्र से होकर गुजरेगी।

सूचना प्रसंस्करण संवेदिक स्मृति में एनकोड की जाती है जहाँ प्रत्यक्षीकरण तथा अवधान निर्धारित करता है कि क्रियात्मक स्मृति में क्या संग्रहित किया जाएगा जिसे भविष्य में उपयोग में लाया जा सके। संपूर्ण रूप से प्रसंस्कृत तथा पूर्व निर्मित ज्ञान से जुडी हुई सूचना दीर्घकालीन स्मृति का अंग बन जाती है जिसे क्रियात्मक स्मृति में वापस जाने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है। (इकाई 2 में आप इन प्रक्रियाओं के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे)

1.5.2.2.गेस्टाल्ट (पूर्णाकार) सिद्धान्त

गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है समग्र अथवा पूर्णाकार। इससे किसी वस्तु, अनुभव, परिस्थिति या समस्या की समग्रता का बोध होता है। गेस्टाल्टवादी मानते हैं कि जब हम किसी समस्या का प्रत्यक्षीकरण करते है तो हम इसे अंशों में विश्लेषित नहीं करते वरन हम इसके सम्पूर्ण का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। अंशों में विश्लेषित करने से वस्तु की समग्रता नष्ट हो जाती है। व्यक्ति किसी वस्तु को एक इकाई में ग्रहण कर उसके विभिन्न भागों पर प्रकाश डालता है। किसी वस्तु को उसके पूर्ण रूप में देखने और समझने के बाद उसके भागों का अध्ययन करना अधिक सुगम होता है।

गेस्टाल्टवादी सीखने को एक उद्देश्यपूर्ण, अन्वेषणात्मक तथा रचनात्मक प्रक्रिया मानकर चलती हैं। उनके अनुसार सीखनेवाला जो कुछ सीख रहा होता है, उसका समग्र रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है

तथा उसमें निहित संयोजनों का सही ढंग से विश्लेषण करता है। व्यक्ति का वातावरण के प्रति अवबोध तथा बुद्धिमतापूर्ण उचित अनुक्रिया व्यक्त करने की योग्यता अंतर्दृष्टि कहलाती है। अंतर्दृष्टि एक ऐसी मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा किसी समस्या का हल अचानक ही मष्तिष्क में आ जाता है। पूर्णाकार में अंतर्दृष्टि निहित होती है। किसी समस्या का पूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण, इसके समाधान हेतु सूझ या अंतर्दृष्टि का निर्माण करता है, जिसमें समस्या या परिस्थिति के विभिन्न उद्दीपनों का पैटर्न युगपत बनता है जिससे अचानक ही समस्या का हल निकल आता है। कोहलर के अनुसार अंतर्दृष्टि का अर्थ हल को एकाएक पकड़ लेना है जिसमें ऐसी प्रक्रिया आरम्भ होती है जो परिस्थिति के अनुसार चलती रहती है।

पूर्णाकारवाद के नियम

1.संरचनात्मकता: इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी समस्या या परिस्थिति के विभिन्न उद्दीपनों के युग्मपत को एक निश्चित संरचना के रूप में देखता है जिससे उसमें समस्या के समाधान हेतु अंतर्दृष्टि विकसित होती है।

2.समानता: जो वस्तुएँ आकर में समान होते हैं वे दूसरे वस्तुओं के समूह से पृथक दिखाई देते हैं।

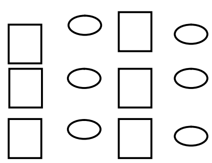

इस चित्र में बॉक्स का समूह अंडाकार गोलों के समूह से पृथक दिखाई पड़ता है।

3.सानिध्य: इस नियम के अनुसार जो वस्तुएँ निकट होती हैं वे एक समूह में दिखाई देती हैं।

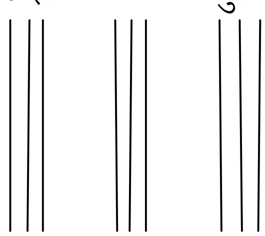

ये रेखाएँ आपस में सानिध्य के कारण रेखाओं के तीन समूह के रूप में दिखते हैं।

1. **संवरण (Closure):** निम्न चित्र में चार रेखाएँ खिंची गई है, परन्तु वे एक चतुर्भज के समान दिखाई देती है क्योंकि हमारा मष्तिष्क इन रेखाओं के बीच के रिक्त स्थान का अवलोकन नहीं करता।

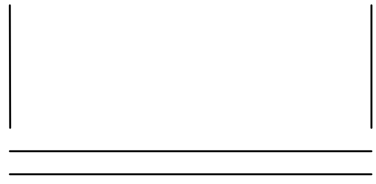

गेस्टाल्ट की अधिगम में भूमिका

गेस्टाल्ट की सीखने में भूमिका के सन्दर्भ में कोहलर तथा कॉफ्का के प्रयोग विशेष रूप से प्रसिद्द हैं। कोहलर ने अपने प्रयोगों से यह दिखाया कि मनुष्य प्रयत्न तथा भूल द्वारा नहीं सीखता वरन जब कोई नई समस्या उत्पन्न होती है तो वह परिस्थिति का अवलोकन करता है तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रखकर इसका पूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक वह समस्या का समाधान या उद्देश्य की पूर्ति न कर ले। इस प्रकार के सीखने को अंतर्दृष्टि अथवा सूझ द्वारा सीखना कहते हैं।

प्रयोग सं. 1- कोहलर ने सुल्तान नाम के एक भूखे चिपेंजी को एक पिंजरे में बंद रखा जिसमें एक छड़ी रखी गई। पिंजरे के बाहर केले इतनी दूरी पर रखे गए जिन्हें छड़ी की सहायता से आसानी से प्राप्त किया जा सके। भूखा चिपेंजी केले को देखकर व्याकुल हो उठा तथा उसने केले को प्राप्त करने के बहुत प्रयास किए किन्तु वह केले को पा न सका। अंततः, उसकी दृष्टि पिंजरे के अन्दर रखी छड़ी पर पड़ी तथा छड़ी की लम्बाई का केले की पिंजड़े से दूरी के साथ संयोजन कर, छड़ी को उठाकर उसकी सहायता से केले को प्राप्त कर लिया।

प्रयोग सं. 2- दूसरे प्रयोग में पिंजरे में दो छड़ियाँ रखी गई, जिन्हें परस्पर जोड़ा जा सकता था। अब केले को इतनी दूरी पर रखा गया कि उसे तभी प्राप्त किया जा सकता था जब चिपेंजी दोनों छड़ियों को जोड़कर एक बना दे। केले को प्राप्त करने के लिए चिपेंजी एक छड़ी के साथ कोशिश करता रहा अचानक उसने दूसरी छड़ी को देखा और उसे भी उठा लिया। दोनों छड़ियों की कुल लम्बाई तथा केले की पिंजरे से दूरी का संपूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण करने पर चिपेंजी को अचानक से सूझ मिली और उसने दोनों छड़ियों को जोड़कर एक छड़ी बना दी तथा उसकी सहायता से केले को प्राप्त कर लिया।

प्रयोग सं 3- इस प्रयोग में पिंजरे के अन्दर दो बॉक्स रख दिए गए तथा केले को पिंजरे की छत से इतनी ऊंचाई से लटकाया गया कि उसे तभी प्राप्त किया जा सकता था जब चिपेंजी दोनों बक्सों को एक-के ऊपर रखे। उसने उछल-उछल कर केले को प्राप्त करने के बहुत प्रयास किए पर वह असफल रहा। उसके बाद वह एक बॉक्स के ऊपर चढ़कर केले को पकड़ने का प्रयास करने लगा पर उसे सफलता नहीं मिली। अनायास ही उसकी दृष्टि दुसरे बॉक्स पर पड़ी। उसने एक बक्से को दूसरे बॉक्स के ऊपर रखा तथा केले को प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार कोहलर के प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य या चिपेंजी जैसे जानवर किसी समस्या या परिस्थिति के विभिन्न अंगों के मध्य संयोजन तथा सम्बन्ध स्थापित कर इसका पुनर्गठन करते हैं, जिससे समस्या के समाधान हेतु अचानक अंतर्दृष्टि या सूझ का विकास होता है।

गेस्टाल्टवाद व पूर्णाकारवाद एवं शिक्षा

अधिगम वातावरण: शिक्षक द्वारा इस प्रकार का अधिगम वातावरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि बच्चा स्वयं सीखने के लिए प्रेरित हो, वह किसी समस्या के विभिन्न पक्षों का एक युग्म या इकाई के रूप में अवलोकन करे जिससे उसमें समस्या के निदान हेतु अंतर्दृष्टि विकसित हो।

पूर्ण समस्या: शिक्षक द्वारा किसी समस्या या पाठ को पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि बच्चे को उस समस्या या पाठ का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो तथा उसमें अंतर्दृष्टि उत्पन्न हो।

पाठ का संगठन: शिक्षक को पाठ का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि वह सम्पूर्णता प्राप्त कर ले तथा बच्चे में अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने योग्य बन जाए।

सामान्यीकरण: शिक्षक को कक्षा में पढाए गए विभिन्न तथ्यों का सामान्यीकरण करना चाहिए ताकि बच्चा पाठ की विषय वस्तु को सम्पूर्ण रूप से अनुभव कर सके।

उपरोक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि गेस्टाल्टवाद सीखने के व्यवहारवादी सिद्धांतों पर आघात करता है। यह सूझ-बुझ के सामान्य ज्ञान द्वारा सीखने पर बल देता है। यदि बच्चा किसी अनुभव या वस्तु को संपूर्णता में ग्रहण करता है तो उसमें उस वस्तु से जुड़े प्रश्नों को हल करने की अंतर्दृष्टि उत्पन्न होती है।

अपने प्रगति की जांच करें।

1. गेस्टाल्ट या पूर्णाकार से आप क्या समझते हैं?

..
..
..

2. गेस्टाल्टवाद के विभिन्न नियमों की व्याख्या करें।

..
...

3.कोहलर के प्रयोगों का उदाहरण लेते हुए यह बताएँ कि गेस्टाल्ट प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार समस्या समाधान हेतु अंतर्दृष्टि उत्पन्न करता है?

..
...

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने सीखना एवं सीखने के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन किया। सीखने की प्रक्रिया को किसी निश्चित स्थान से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता वस्तु सीखने की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति कही भी, किसी भी परिस्थिति, किसी से भी किसी भी समय, कुछ भी सीख सकता है। व्यक्ति के

जीवन का अधिकांश भाग सीखने या सीखने की प्रक्रिया से प्रभावित रहता है। सीखने के फलस्वरुप ही मानव अपने व्यवहार का परिष्कार करता है। सीखना व्यवहार का महत्वपूर्ण एवं आवश्यक पक्ष है। सीखने के प्रमुख सिद्धान्त- थार्नडाइक का प्रयास व त्रुटि का सिद्धान्त, पावलॉव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त, स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त, अधिगम का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का अध्ययन हमने इस इकाई में किया।

1.7. अभ्यास प्रश्न

1. सीखने को परिभाषित कीजिए ? एवं इसकी प्रकृति की व्याख्या कीजिए।
2. सीखने के प्रमुख व्यवहारवादी सिद्धान्त कौन कौन से हैं? इन सभी में क्या अंतर हैं स्पष्ट कीजिए।
3. सीखने के व्यवहारवादी सिद्धान्तो के शैक्षिक निहितार्थ क्या हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
4. सीखने के संज्ञानवादी सिद्धान्तो के शैक्षिक निहितार्थ क्या हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

- मंगल, एस. के. (2014) शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- कुप्पुस्वामी बी. (1971), एन इन्ट्रोडक्षन टू सोषल साइक्लाजी, बाम्बे पुब्लिशिंग हाउस।
- फ्रीमेंन एफ.एस. (1971), थियोरी एण्ड प्रोजेक्ट आफ साइक्लाजीकल टेस्टिंग, बाम्बे, आक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच.।
- पाण्डे, राम शकल (1991), शिक्षा वर्तमान संदर्भ में, बोहरा पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद।
- Cronbach,I.J.(1970),Essentials of Psychological Testing,3rd ed., New York, Harper and Row Publishers.
- Dandapani, S.(2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi, Anmol Publications Pvt. Ltd.
- Ebel, Robert L,.(1979), Essentials of Psychological Measurement, London, Prentice Hall International Inc.
- Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.

- Mangal, S.K. (2007), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
- Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra. Vinod Pustak Mandir.

इकाई -2
सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य

इकाई संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य

2.2.1 वैयक्तिक निर्माणवाद

2.2.2 सामाजिक निर्माणवाद

2.3.1 बुद्धि

2.3.2.बुद्धि की अवधारणा

2.3.3. बुद्धि का मापन

2.3.4. बुद्धि के मापन से जुड़े प्रश्न

2.4.5.बहुबुद्धि सिद्धान्त

2.5. 1. स्मृति

2.5. 2 स्मृति के प्रकार

2.5.2.1. सांवेगिक

2.5. 2.2. अल्पकालिक

2.5. 2.3. दीर्घकालिक स्मृति

2.5. 2.4. कार्यात्मक स्मृति (वर्किंग मेमोरी)

2.5. 3. विस्मरण के कारण

2.5. 4. स्मृति बढ़ाने की युक्तियाँ

2.6. सारांश

2.7. अभ्यास प्रश्न

2.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- शिक्षण के निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य को जान पाएंगे।
- वैयक्तिक निर्माणवाद और सामाजिक निर्माणवाद की संकल्पना एवं शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थों को समझ सकेंगे।

- बुद्धि की संकल्पना का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।
- बहुबुद्धि के प्रकारों को समझ सकेंगे।
- स्मृति के प्रकार और इसके शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थों को समझ सकेंगे।

2.2 सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य

सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य इस बात पर जोर देता है कि बच्चा स्वयं ही जगत के ज्ञान तथा समझ का निर्माण करता है। इस ज्ञान के निमित्त का आधार उसके अनुभव तथा उन अनुभवों पर किया जानेवाला आत्मालोचन है। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मानव को उसके सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के अन्वेषणों द्वारा अपने मन की सक्रिय रचना करनेवाले के रूप में देखता है, इस विचारधारा को निर्माणवाद के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें बच्चा नई सूचनाओं तथा असंगठित अनुभवों को पूर्व ज्ञान के संपर्क में संगठित करता है तथा उसका स्पष्टीकरण कर ज्ञान का निर्माण करता है। यह बाह्य जगत के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान को निर्मित करने की विधियों पर जोर देता है। इसमें किसी पाठ या विषय-वस्तु को बच्चे के वास्तविक जगत के अनुभवों से जोड़कर पढ़ाया जाता है जिससे बच्चा स्वयं विषय-वस्तु के अर्थ या अवधारणा का निर्माण करता है। बच्चे के द्वारा किसी वस्तु या विचार सम्बन्धी अवधारणा का स्व-निर्माण ही सीखना है। इस सिद्धान्त में पढ़ाए जा रहे पाठ या विषय पर ध्यान न देकर सीखने वाले द्वारा सीखने के सम्बन्ध में किए जा रहे विचार पर जोर दिया जाता है एवं सीखने वाले के द्वारा अपने अनुभवों के आधार पर किसी वस्तु के अर्थ के निर्माण से स्वतंत्र कोई ज्ञान नहीं होता।

बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के विषय में जीन पियाजे का सिद्धान्त निमित्त परक सिद्धान्त भी कहलाता है। निर्माणवादी अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन पियाजे के द्वारा किए गए अनुसन्धान कार्यों के आधार पर सिमोर पेपर्ट (Seymour Papert) के द्वारा किया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना ज्ञान का हस्तानान्तरण नहीं वरन ज्ञान का पुनर्निर्माण है। निर्माणवादी विचारकों का मत है कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चा कोई स्लेट नहीं जिसपर ज्ञान लिखा जाय। वे अपने पूर्व निर्मित ज्ञान, विचारों तथा समझ के साथ अधिगम परिस्थितियों में आते हैं। यह पूर्व निर्मित ज्ञान कच्ची सामग्री है जिस पर वे नए ज्ञान का निर्माण करेंगे। ज्ञान कोई वस्तु नहीं जिसका हस्तानान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जा सके। ज्ञान का सिर्फ निर्माण संभव है। हर मनुष्य अपने ज्ञान का निर्माण अनुभवों से विकसित पूर्व ज्ञान के आधार पर करता है। विको (Vico) ने कहा है कि मनुष्य जिस ज्ञान का निर्माण करता है उसे ही समझ सकता है। जब विद्यार्थी लगातार अपने अनुभवों पर आत्मलोचन करता है तो वह अपने विचारों में एक जटिलता पाता है और यही जटिलता उसे नए ज्ञान को पूर्व निर्मित ज्ञान के साथ समाहित करने की योग्यता प्रदान करती है।

रूस के मनोवैज्ञानिक व्यगोत्सकी (Vygotsky) ने सामाजिक निर्माणवाद का प्रतिपादन किया जो यह बताता है कि मनुष्य का अधिगम उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में घटित होता है। बच्चा सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाता है तथा उसके संज्ञानात्मक विकास में सांस्कृतिक उपकरणों (Cultural Tools) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

निर्माणिक अधिगम सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. सीखने की प्रक्रिया मानसिक प्रकृति की होती है, यह मस्तिष्क में गठित होती है तथा भौतिक गामक क्रियाएँ सीखने में सहायक होते हैं।
2. बच्चे के द्वारा किसी वस्तु के अर्थ का स्व-निर्माण ही सीखना कहलाता है।
3. बच्चा किसी विषय-वस्तु को अपने बाह्य जगत या अपने वास्तविक जीवन अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में सीखता है।
4. बच्चा अपने भौतिक तथा सामाजिक वातावरण के साथ अंतःक्रिया करता है तथा इस अंतःक्रिया द्वारा प्राप्त अनुभवों का आत्मलोचन कर ज्ञान का निर्माण करता है।
5. सक्रिय अधिगम (Activity based Learning) , खोज अधिगम (Discovery Learning) के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वस्तुतः निर्माणवाद के सभी तरीके दी गयी परिस्थितयों में छात्रों के स्वतंत्र अन्वेषण को बढ़ावा देते हैं।
6. बिना किसी पूर्व ज्ञान के नवीन ज्ञान का सीखना संभव नहीं होता। यानी नवीन ज्ञान का निर्माण तभी संभव है जब इसे पूर्व निर्मित ज्ञान से जोड़कर सीखा जाय।
7. सीखना सान्दर्भिक होता है यानी बच्चा जो जानता है उस सन्दर्भ में आगे सीखता है।
8. सीखना एक सामाजिक क्रिया है जहाँ बच्चा अन्य बच्चों तथा शिक्षक के साथ अपने अनुभव तथा ज्ञान को साझा कर ज्ञान का निर्माण करता है।
9. सीखने में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है।
10. सीखना क्षणिक नहीं होता वरन सार्थक अधिगम के लिए विचारों पर पुनर्विचार करने, उन्हें आजमाने तथा प्रयुक्त करने की जरुरत होती है।
11. बच्चा तभी सीखता है जब उसे सीखना आवश्यक या महत्वपूर्ण प्रतीत होता है और तभी वह सीखने या खोज की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है। सीखने के कारणों को जाने बिना बच्चा सीखने की प्रक्रिया में समावेशित नहीं हो सकता।

2.3.1 वैयक्तिक निर्माणवाद

वैयक्तिक या मनोवैज्ञानिक निर्माणवादी जैसे जीन पियाजे इस बात पर जोर देते हैं कि बच्चा कैसे अपने विचार, अवधारणा तथा आत्म-संप्रत्यय के आधार पर अपने वातावरण या दुनिया का अनुभव करता है, जिसमें वह रहता है। वैयक्तिक निर्माणवाद ऐसे शिक्षाशास्त्रीय प्रविधियों तथा युक्तियों को

समावेशित करता है जो बच्चे के अभिरुचि तथा आवश्यकताओं का समर्थन करते हैं तथा उसके संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देते हैं। यह अधिगम का असान्दर्भिक उपागम (Deconextualised Approach) है, जहाँ बच्चे का विकास एक जैव वैज्ञानिक प्रक्रिया माना जाता है जो सभी बच्चों के लिए लगभग समान होता है, इसमें उनके जाती, वर्ग, वंश या सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती तथा बच्चा सामाजिक संसार में ज्ञान का निर्माण व्यक्तिगत रूप से करता है। बच्चा अपने ज्ञान, विचार तथा अवधारणाओं के साथ कक्षा में प्रवेश करता है जिसमें वह शिक्षक की सहायता से आवश्यक बदलाव लाता है, जिससे नए ज्ञान का निर्माण होता है। शिक्षक उपयुक्त कार्यों तथा प्रश्नों द्वारा इस बदलाव को सुगम बनता है। पियाजे का विचार था कि अधिगम एक निर्माणवादी प्रक्रिया है जिसमें बच्चा अपनी ज्ञान तथा समझ का निर्माण करता है। बच्चा संज्ञानात्मक विकास के प्रत्येक स्तर पर अधिगम की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है। ज्ञान वास्तविकता की प्रति नहीं है। किसी वस्तु को जानना महज उसे देखना नहीं वरन उस पर कार्य करना है, उसका रूपांतरण करना है तथा इस रूपांतरण की प्रक्रिया को समझना है जिससे यह जाना जा सके वस्तु का निर्माण किस प्रकार किया जाता है।

अधिगम के दौरान बच्चा अपने पूर्व निर्मित ज्ञान, विचार तथा अवधारणाओं में आत्मसात्करण (Assimilation) तथा समाविष्टिकरण (Accommodation) की प्रक्रिया द्वारा आवश्यक बदलाव लाता है। आत्मसात्करण में नवीन अनुभवों को पूर्ववर्ती विद्यमान बौद्धिक संरचनाओं में यथावत व्यवस्थित किया जाता है जबकि समाविष्टिकरण से नवीन अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती बौद्धिक संरचनाओं में सुधार, विस्तार या परिवर्तन किया जाता है। अधिगम के लिए ऐसे युक्तियों का सहारा लिया जाता जिससे नए ज्ञान को पूर्ववर्ती ज्ञान से जोड़ा जा सके। इस प्रक्रिया में शिक्षक सहायक तथा मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। वे बच्चे की सोच को अधिक जटिल अवबोधन की ओर अग्रसर करते हैं। शिक्षक बच्चे के वर्तमान विचारों एवं अवधारणाओं को सुनते हैं तथा उसमें आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए चुनौतीपूर्ण कार्यों तथा विमर्शों को उपयोग में लाते हैं। वे बाल-केन्द्रित, स्वाभाविक क्रिया आधारित तथा स्वतः अनुभव के आधार पर ज्ञान निर्माण के अवसर उपलब्ध करवाने वाली विधियाँ अपनाते हैं। अधिगम की प्रक्रिया में सहपाठियों की सहभागिता आवश्यक नहीं है, किन्तु सहपाठी प्रश्न पूछकर बच्चे की सोच को प्रोत्सहित कर सकते हैं। बच्चे के मष्तिष्क में सक्रिय रूप से ज्ञान का निर्माण होता है। बच्चा सक्रिय चिन्तक, व्याख्याता, इंटरप्रेटर एवं प्रश्नकर्ता के रूप में कार्य करता है।

2.3.2 सामाजिक निर्माणवाद

सामाजिक निर्माणवादी ज्ञान के निर्माण की उत्पत्ति सामाजिक अंतःक्रिया को मानते हैं, जहाँ वे अपने विचारों तथा अनुभवों को साझा करते हैं, तुलना करते है तथा वाद-विवाद करते हैं। इस सामाजिक

अंतःक्रिया में प्रशिक्षु (सीखनेवाला) एवं परामर्शदाता (शिक्षक) के मार्गदर्शन में उत्तरोत्तर अधिक जटिल समझ एवं कौशल तथा अंततः स्वतंत्र क्षमता का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया में सीखनेवाला अपने अर्थ को परिष्कृत करता है तथा दूसरों को भी उनके अर्थ को ढूँढने में सहायता करता है। सामाजिक निर्माणवाद व्यगोत्सकी के सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित करता है। उनका माना था कि मानवीय गतिविधियाँ सांस्कृतिक परिवेश में घटित होती है तथा इन्हें इस परिवेश के बिना नहीं समझा जा सकता है। किसी व्यक्ति का विकास उसके सामाजिक साझा गतिविधियों (Socially Shared Activities) का आत्मसात्करण (Internalisation) प्रक्रिया में रूपांतरण है। बच्चा समुदाय के व्यस्क या अधिक अनुभवी व सक्षम सदस्यों के साथ सहभागी संभाषण (co-operative dialogue) द्वारा समुदाय की संस्कृति (सोचने तथा व्यवहार करने के तरीके) को सीखता है। बच्चे के सांस्कृतिक विकास में कोई भी क्रिया दो बार उपस्थित होती है।- पहले सामाजिक स्तर पर तथा बाद में वैक्तिक स्तर पर। साझा गतिविधियों में उच्च मानसिक क्रियाओं का सह-निर्माण होता है जिसे बाद में बच्चे द्वारा आत्मसात किया जाता है।

सामाजिक निर्माणवाद की मुख्य विशेषताएँ-

1. सामाजिक निर्माणवाद की आधारभूत प्रकृति सामाजिक अंतःक्रिया है। संज्ञानात्मक निर्माणवाद के वैयक्तिक अन्वेषण की तुलना में सामाजिक निर्माणवाद में सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा लोग अपने ज्ञान तथा अनुभवों को साझा करते हैं तथा उन पर विचार-विमर्श कर किसी समस्या का समाधान निकालते हैं या नए ज्ञान का निर्माण करते हैं।
2. परिवेश जिसमें अधिगम की प्रक्रिया घटित होती है वह निर्मित ज्ञान या सोच से पृथक नहीं होता। किसी नए ज्ञान या कौशल को बच्चों के सामुदायिक अभ्यासों (Community Practices) से जोड़ा जाता है जहाँ इसे सीखा गया है या इसकी उत्पत्ति हुई है।
3. सामाजिक निर्माणवाद स्थापित अधिगम (Situated Learning) की अवधारणा को सम्मिलित करता है तथा इस बात पर जोर देता है कि वास्तविक दुनिया एक शिक्षुता (Apprenticeship) है जहाँ आरम्भ करनेवाला (Novice) किसी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में अधिक-से-अधिक उत्तरदायित्व लेता है तथा धीरे-धीरे वह कार्य को करने में सक्षम बन जाता है। यहाँ ज्ञान को वैयक्तिक संज्ञानात्मक संरचना के रूप में नहीं वरन कालांतर में समुदाय के विकास के रूप में देखा जाता है। इसमें सामुदायिक अभ्यास (Community Practices) तथा उपकरण Community Tools) जैसे- भाषा, संकेत एवं कोड आदि सामुदायिक ज्ञान में सम्मिलित होते हैं।
4. सामाजिक निर्माणवाद सामाजिक गतिविधियों को समझने तथा इस समझ पर आधारित ज्ञान के निर्माण के लिए संस्कृति तथा परिवेश के महत्व पर बल देता है।

5. अन्तःविषयनिष्ठता सामाजिक निर्माणवाद की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। यह किसी समूह या समुदाय के सदस्यों का साझा अवबोध है जो उनके उभय-निष्ठ अभिरुचियों तथा मान्यताओं पर आधारित होता है, जो उनके संप्रेषण के धरातल का निर्माण करता है। अन्तःविषयनिष्ठता लोगों को नई सूचना तथा गतिविधियों के अवबोध के विस्तार में भी सहायता प्रदान करता है।
6. सामाजिक निर्माणवाद में व्यक्ति द्वारा किसी समस्या का समाधान या उसके उच्च मानसिक प्रक्रियाओं का विकास समूह के वरिष्ठ सदस्य या अधिक अनुभवी तथा सक्षम मित्रों के साथ साझा गतिविधियों में संवाद तथा विचार-विमर्श द्वारा होता है। उच्च मानसिक क्रियाएँ पहले अन्तःमनोवैज्ञानिक (Interpsychological) रूप से उत्पन्न होती है जिसे बाद में व्यक्ति दारा आत्मसात (Intrapsychological) किया जाता है और यह व्यक्ति के संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure) का अंश बन जाता है। व्यगोत्सकी के अनुसार सामाजिक अंतःक्रिया कई उच्च मानसिक क्रियाओं जैसे समस्या समाधान की उत्पत्ति है।
7. सामाजिक निर्माणवादी ऐसे उपकरणों पर जोर देते हैं जो किसी संस्कृति द्वारा चिन्तन को सहारा देने के लिए प्रदान किए जाते हैं। सांस्कृतिक उपकरण दो प्रकार के होते हैं- वास्तविक उपकरण (जैसे- प्रिंटिंग प्रेस, रूलर, अबेकस, कंप्यूटर, इन्टरनेट आदि) तथा प्रतीकात्मक उपकरण (जैसे- संख्या, भाषा, सांकेतिक भाषा, संकेत तथा कोड इत्यादि)। बच्चे विभिन्न दैनिक गतिविधियों में समुदाय के वयस्कों या अधिक सक्षम मित्रों/सहपाठियों के साथ अतःक्रिया द्वारा इन उपकरणों की समझ तथा कौशल विकसित करते हैं। वे इन गतिविधियों में विचारों तथा सोचने के तरीकों का आदान-प्रदान करते हैं- मानचित्र खींचना, संवाद के लिए संकेतों का उपयोग, अवधारणाओं का विभिन्न आकृतियों द्वारा चित्रण इत्यादि। भाषा संज्ञानात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। यह विचारों की अभिव्यक्ति तथा प्रश्न पूछने का एक सशक्त माध्यम है। व्ययगोत्सकी के अनुसार भाषा बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के लिए सहायक उपकरण के रूप में कार्य करता है- कठिन कार्यों का समाधान करने, किसी समस्या के समाधान की उसके क्रियान्वयन के पूर्व योजना तैयार करने, किसी व्यवहार की निपुणता अर्जित करने आदि में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सामाजिक निर्माणवाद एवं सीखना

1. *निर्देशित अधिगम (Guided Learning)*: व्यगोत्सकी का मानना था कि बच्चे का संज्ञानात्मक विकास उसके समुदाय के अन्य सदस्यों-वयस्कों एवं अधिक सक्षम मित्रों/सहपाठियों के साथ संवाद तथा अंतःक्रिया द्वारा होता है। वे बच्चे को आवश्यक सूचना तथा सहायता प्रदान करते हैं (प्रेरक, अनुस्मारक, प्रोत्साहन आदि) ताकि बच्चा किसी कार्य या समस्या का समाधान सफलतापूर्वक कर सकें। ज्यों-ज्यों बच्चा समस्या के

समाधान हेतु आवश्यक ज्ञान तथा कौशल में निपुण होते जाता है, वे इस सहायता को कम करते जाते हैं।

2. *समीपस्थ विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development)*: यह बच्चे के अधिगम तथा विकास का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ बच्चा किसी दिए गए कार्य को अकेले करने में असमर्थ होता है किन्तु उसी कार्य को वह समुदाय के व्यस्क सदस्यों या अधिक सक्षम सहपाठी की सहायता से सफलता पूर्वक निष्पादित करता है। व्यस्क सदस्यों या अधिक सक्षम सहपाठियों द्वारा प्राप्त सहायता स्कैफ्फोल्डिंग (Scaffolding) कहलाती है। धीरे-धीरे बच्चा उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।
3. *निजी भाषण (Private Speech) तथा अधिगम*: यदि बच्चे को शब्द या वाक्य/वाक्यों के रूप में सहायता प्रदान की जाती है तो इसे बच्चे द्वारा पहले निजी भाषण के रूप में आत्मसात किया जाता है, धीरे-धीरे उम्र के साथ यह आंतरिक भाषण (Inner Speech) का रूप ले लेता है। यह निजी या आतंरिक भाषण चिन्तन प्रक्रिया को नियंत्रित करता है तथा उन्हें स्व-निर्देशित अधिगम के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए बच्चे स्वयं को अनुस्मारक (Reminder) द्वारा दिशा-निर्देशित करते हैं। जीवविज्ञान प्रयोगशाला में विद्यार्थी स्लाइड तैयार करते वक्त स्वयं के साथ संवाद करता है- "कवर स्लिप को स्लाइड की सामग्री के ऊपर पर धीरे-धीरे रखों।"
4. *जटिल अधिगम वातावरण तथा प्रमाणिक कार्य (Complex Learning Environment and Authentic Task)*: सामाजिक निर्माणवादियों का मानना है कि बच्चों के अधिगम के लिए जटिल अधिगम वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जहाँ सामान्य समस्याएँ या आधारभूत कौशल अभ्यास कार्य के स्थान पर वास्तविक जीवन से जुड़े असंरचनात्मक समस्याओं का चयन किया जाता है जिसके कई दृष्टिकोण होते हैं तथा इसके कई समाधान हो सकते हैं। बच्चों के लिए ऐसे गतिविधियों का आयोजन किया जाता है जो उनके वास्तविक जगत समस्याओं/अभ्यासों से संबंधित होता है, जहाँ अवधारणाएँ जिन्हें सीखा जाना है को व्यवहार में लाया जाता है।
5. *सामाजिक समझौता वार्ता (Social Negotiation)*: सामाजिक निर्माणवाद सामाजिक समझौता वार्ता की प्रक्रिया पर आधारित होता है जहाँ बच्चा अपने ज्ञान एवं अनुभवों को सहपाठियों तथा शिक्षक के साथ साझा करता है तथा एक-दूसरे के दृष्टिकोण एवं अनुभवों का सम्मान करता है। इस प्रक्रिया में एक ऐसे विचार या अवधारणा का निर्माण होता है जिस पर सभी की सहमति होती है।
6. *बहुदृष्टिकोण तथा पाठ्य-वस्तु का बहुप्रतिनिधित्व (Multiple Perspectives and Multiple Representations of the Content):* कक्षा में किसी पाठ्य वस्तु सम्बन्धी

समस्या को कई प्रकार की सामग्री या प्रारूपों द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिए। जैसे- किसी समस्या को अनुरूपों (Analogs), उदाहरणों, रूपकों (Metaphors), चित्रों, विडियो तथा एनीमेशन द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। साथ-ही-साथ समस्या के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर इसके समाधान का प्रयास करना चाहिए।

7. *अधिगम का स्वामित्व (Ownership of Learning)*: बच्चों को उनके अधिगम का स्वामित्व दिया जाना चाहिए ताकि वे अपने अभिरुचि तथा अभिक्षमता के आधार पर शिक्षक के मार्गदर्शन में अधिगम गतिविधि का चुनाव, उसके उद्देश्यों का निर्धारण, संसाधनों का चयन तथा इसका संगठन एवं संचालन कर सकें। वे सक्रिय रूप से अधिगम की प्रक्रिया में संलग्न रहते हैं, जिससे ज्ञान का निर्माण सुनिश्चित तथा सहज हो जाता है।
8. सामाजिक निर्माणवाद निदानात्मक अधिगम को सम्मिलित करता है जो सीखनेवाले के वैकल्पिक अवधारणाओं तथा त्रुटियों को दूर कर देता है।
9. यह बच्चों को पृच्छा तथा समस्या आधारित अधिगम के लिए प्रोत्साहित करता है। पाठ्यवस्तु को वास्तविक जीवन से जुड़े समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
10. यह बच्चों का अपने परासंज्ञानात्मक क्षमताओं तथा युक्तिपूर्ण आत्म-नियंत्रण की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।

सारतः हम कह सकते हैं कि सामजिक गतिविधियों में विद्यार्थियों की सहभागिता ज्ञान निर्माण में अहम भूमिका निभाती है। ज्ञान का महज निर्माण नहीं वरन ज्ञान का सह-निर्माण सामजिक अंतःक्रिया द्वारा होता है। शिक्षक एक शिक्षक के रूप में नहीं वरन एक वरिष्ठ छात्र, सहायक एवं मार्गदर्शक के रूप में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं। सामजिक निर्माणवादी पद्धतियाँ व्याख्यान में नहीं बल्कि संवाद व परिचर्चाओं में विश्वास करती है तथा अधिगम का स्वामित्व सीखनेवाले को प्रदत्त करती है।

अपने प्रगति की जांच करें।

1.वैयक्तिक निर्माणवाद की अवधारणा स्पष्ट करें।

....

....

2. सामजिक निर्माणवाद वैयक्तिक निर्माणवाद से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

3. सामाजिक निर्माणवाद के विशेषताओं की सोदाहरण विवेचना करें।

..

....

4.सामाजिक निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थी, शिक्षक एवं सहपाठी (Peer) की सीखने-सीखाने की प्रक्रिया में भूमिका पर प्रकाश डालें।

..

....

2.4.1 बुद्धि

पिछली इकाई में हमने सीखने की अवधारणा तथा सीखने के विभिन्न उपागमों के बारे में पढ़ा। साथ ही हमने इस इकाई के पहले अंक में निर्माणवाद एवं उसके प्रकार के बारे में व्याख्या की। अब हम बुद्धि एवं स्मृति के बारे में पढ़ेंगे।

बुद्धि शब्द का प्रयोग सामान्य बातचीत मे बहुतायात से किया जाता है। अधिकांश व्यक्ति बुद्धि को किसी स्थूल वस्तु के रूप में देखते है जिसे प्रत्यक्ष रूप में समझा जा सकता है, जबकि बुद्धि वास्तव में अमूर्त होती है। जिसे छूकर या देखकर नहीं समझा जा सकता है। वरन् इसे व्यक्ति के व्यवहार को देखकर जाना जाता है। इस इकाई के तहत हम बुद्धी की अवधारणा उसका मापन उससे जुडी प्रश्न, बुद्धि के सिद्धान्त विशेषकर बहु बुद्धि सिद्धान्त पर ज़ोर देंगे। इसके साथ ही स्मृति की अवधारणा, प्रकृति, प्रकार, विस्मरण के कारण एवं स्मृति को बढ़ाने की युक्तियों के बारे में पढ़ेंगे।

2.4.2.बुद्धि की अवधारणा

बुद्धि एक सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। बुद्धि मानव की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसका उसके व्यक्तित्व के निर्माण तथा परिस्थिति के अनुसार समायोजित करने में विशेष महत्व है। बुद्धि के स्वरूप का वर्णन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार किया है। अत: मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दी गई, परिभाषाओं का अध्ययन करके ही हम बुद्धि के स्वरूप को समझ सकते है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित है-

“बुद्धि एक सामान्य योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति नई परिस्थितियों में अपने विचारों को जान-बूझकर समायोजित कर लेता है”। - **स्टर्न**

“बुद्धि सापेक्ष रूप से नवीन परिस्थियों में अभियोजित करने की जन्मजात योग्यता है।” - **बर्ट**

“बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।” - **गाल्टन**

“किसी समस्या को समझना, उसके विषय में तर्क करना, तथा किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना बुद्धि की आवश्यक क्रियाएं है।” - **बिने**

"अमूर्त वस्तुओं के विषय में सोचने की योग्यता बुद्धि है।" - **टरमन**

"वास्तविक परिस्थिति के अनुसार अपेक्षित प्रतिक्रिया करने की योग्यता बुद्धि है।" **- थार्नडाइक**

"सीखने की शक्ति ही बुद्धि है"। - **बकिंघम**

2.4.3. बुद्धि का मापन

मनोवैज्ञानिकों में गाल्टन, कैटेल, पीयरसन आदि विद्वानों ने भी अनेक बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया है परन्तु ये परीक्षाएँ साधारण मानसिक क्रियाओं को मापती थी इसलिए इन्हें बुद्धि परीक्षण नहीं कहा जा सकता। बिने ने सन् 1905 में मनोवैज्ञानिक साइमन की सहायता से भिन्न-भिन्न आयु के बालकों की बुद्धि परीक्षा के लिए प्रश्नावलियां तैयार की जिसे 'बिने साइमन बुद्धिमानक्रम' कहा गया।

बुद्धि परीक्षाणों के प्रकार

बुद्धि-मापक परीक्षाओं को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया गया है-

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा:- यह परीक्षा एक समय में एक व्यक्ति की ली जाती है। सर्वप्रथम इसका आरम्भ बिने ने किया और इस कार्य में अपने सहयोगी साइमन को लिया और एक परीक्षा विधि बनाई जिसे 'बिने साइमन बुद्धि मानक्रम' कहा गया है। बिने साइन बुद्धिमान प्रणाली में मानसिक आयु के आधार पर बुद्धि परीक्षण किया गया। यह परीक्षा 3 से 15 वर्ष तक के बालकों के लिए थी। जिन-जिन प्रश्नों को 60 प्रतिशत बालकों ने ठीक-ठीक हल कर लिया, उन प्रश्नों में से 6 या 7 प्रश्नों को निकाल कर उन्होंने एक प्रश्नावली का निर्माण किया। इस प्रकार जो बालक जिस उम्र के लिए निर्धारित प्रश्नावलियों के सभी प्रश्नों का ठीक उत्तर दे देता है उसकी मानसिक आयु वही मान ली जाती है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षा:- सामूहिक बुद्धि परीक्षण का तात्पर्य उस परीक्षण से है जिसके द्वारा एक समय में अनेक व्यक्तियों या व्यक्ति-समूह की बुद्धि की परीक्षा ली जा सकती है। इसके लिए टरमैन, थार्नडाइक, लाक्सीले, पिन्टर आदि मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार के सामूहिक परीक्षाणों का निर्माण किया।

सामूहिक परीक्षाणों को दो भागों में विभाजित किया गया है।

- शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- अशाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षण

क्रियात्मक या व्यावहारिक बुद्धि परीक्षा- क्रियात्मक या व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग विशेष रूप से उन लोगों के लिए किया जाता है, जो भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते या निरक्षर है। क्रियात्मक परीक्षाएँ प्राय: व्यक्तिगत रूप से ही ली जाती है।

(क) चित्रांकन परीक्षा:- यह परीक्षा 4 से 10 साल तक की आयु के बालकों के लिए उपयुक्त है। इसमें बालक को एक कागज और पेन्सिल दी जाती है। और उससे विभिन्न प्रकार के चित्र बनाने को कहा जाता है। इस परीक्षा में बालकों को चित्र की पूर्णता के आधार पर अंक दिए जाते है।

(ख) भूलभुलैया परीक्षा:- इसमें बालक को एक ऐसा रेखाचित्र दिया जाता है जिसमें अनेक रास्ते बने होते है। जो बालक एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिना रूकावट के पहुँच जाता है। उसे बुद्धिमान समझा जाता है।

(ग) आकृति फलक परीक्षा:- इसमें एक लकड़ी का तख्ता होता है जिसमें विभिन्न आकृति के छेद बने होते है जैसे गोलाकार, अर्द्धगोलाकार, चतुर्भजाकार, त्रिकोणाकार आदि। इन छेदों में उनके अनुरूप कटे हुए टुकड़ों को ठीक से उचित स्थान में बैठाना पड़ता है। जो बालक नियत समय के भीतर टुकड़ो को ठीक स्थान पर रख देता है उसे बुद्धिमान समझा जाता है।

बुद्धि की माप बुद्धि परीक्षण द्वारा की जाती है। सबसे पहला बुद्धि परीक्षण बिने तथा साइमन ने मिलकर 1905 में बनाया था। यह बुद्धि परीक्षण आने वाले वर्गों में मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी लोकप्रिय है। फलस्वरूप इसका कई बार संशोधन भी किया गया। इस परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण संशोधन टरमैन द्वारा 1916 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया गया। इस संशोधन में सबसे पहली बार बुद्धिलब्धि के संप्रत्यय का बुद्धि के सूचक के रूप में प्रयोग किया गया। इसके बाद अनेक मनोवैज्ञानिकों, जैसे वेशलर, अर्थर, कैटेल, रेवेन आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी बुद्धि परीक्षण बनाकर बुद्धि मापन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत में भी कई मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया है। इनमें डॉ.एस. जलोटा, डॉ. मोहनचंद्र जोशी, डॉ. एस. मुहसिन आदि प्रमुख है।

कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षाणों का जिसका प्रयोग बुद्धि मापन में अधिकतर किया गया है निम्नलिखित हैं:-

1. बिने-साइमन परीक्षण:- इस परीक्षण का निर्माण बिने तथा साइमन ने फ्रेंच भाषा में 1905 में किया। यह एक प्रकार का वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण है। इसमें शाब्दिक एकांशों का प्रयोग किया गया। इसका पहला संशोधन 1908 में किया गया। 1911 में इस परीक्षण का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में गोडार्ड द्वारा अमेरिका में किया गया और मानसिक रूप से मंदित बच्चों की बुद्धि मापने में इसका काफी उपयोग किया गया। इस परीक्षण का संशोधन भिन्न-भिन्न लोगों ने बाद में किया। जैसे कुलमान ने 1912, 1922 तथा 1939, मेंयर्कस ने 1915, 1923 में तथा हेरिंग ने 1922 में इसका संशोधन किया।

इस परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण संशोधन टरमैन ने 1916 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया। इसे स्टैनफोर्ड-विने परीक्षण के नाम से पुकारा गया। पहली बार इस संशोधन के सहारे इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की बुद्धि की माप बुद्धिलब्धि के रूप में कियागया। इस संशोधन द्वारा दो साल से व्यस्कता तक के व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता था। 1960 में पुनः इसका संशोधन

हुआ और अब इसके द्वारा 2 से 22 साल 11 महीना तक के व्यक्तियों की बुद्धि मापी जा सकती थी। 1973 में इस परीक्षण का एक नया मानक तैयार किया गया है। यह बहुत ही विश्वसनीय तथा वैध परीक्षण है। इसकी विश्वसनीयता 90 से ऊपर तथा वैधता .75 से भी अधिक है।

2. वेशलर बुद्धि परीक्षण:- वेशलर जो न्यू यार्क सिटी के बेलेब्यू अस्पताल में काम करते थे, ने बुद्धि के मापन की ओर काफी सक्रिय योगदान दिया है। इन्होंने वयस्कों की बुद्धि मापने के लिए 1939 में एक मापनी तैयार की, जिसका नाम वेशलर - बेलेव्यू मापनी रखा गया। इस परीक्षण के दो फार्म थे और दोनों फार्म में दस-दस उप-परीक्षण थे। दस में पांच शाब्दिक मापनी थे तथा पांच क्रियात्मक मापनी थे। इस परीक्षण का 1955 में संशोधन किया गया और इसका नाम वेशलर वयस्क बुद्धि मापनी रखा गया। 1981 में इस मापनी का फिर संशोधन किया गया और इसका नाम CWAIS-R रखा गया। इस नई संशोधित मापनी में 11 उप-परीक्षण हैं, जिसमें प्रथम 6 शाब्दिक मापनी हैं तथा अंतिम 5 क्रियात्मक मापनी हैं। इस परीक्षण द्वारा 16 से 64 साल तक के व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जाता है। WAIS का तीसरा संस्करण 2005 में किया गया है, जिसे WAIS - IV कहा जाता है।

वेशलर ने बच्चों की बुद्धि मापनी के लिए एक दूसरा परीक्षण 1949 में बनाया है, जिसे वेशलर बुद्धि मापनी बच्चों के लिए या WISC कहा गया। वेशलर ने अत्यन्त छोटे बच्चों की बुद्धि को मापने के लिए एक-दूसरे परीक्षण का निर्माण किया, क्योंकि WISC-R द्वारा 6 साल से नीचे के बच्चों की बुद्धि नहीं मापी जा सकती थी। इस उद्देश्य से 1967 में एक मापनी बनाया गया, जिसका नाम Whechsler Pre-school and Primary Scale of Intelligence (WPPSI) रखा गया। इस परीक्षण का सामान्य आकार-प्रकार पहले दो परीक्षाणों के ही समान था। इस परीक्षण में 11 उप-परीक्षण थे, जिनमें 6 शाब्दिक मापनी थे तथा 5 क्रियात्मक मापनी थे।

3. कैटेल संस्कृति-मुक्त बुद्धि परीक्षण:- इस परीक्षण का निर्माण कैटेल ने किया है, जिसमें तीन मापनियाँ हैं - मापनी I (Scale-I) चार से आठ वर्ष की आयु के बच्चे तथा मानसिक दोष वाले वयस्कों के लिए प्रयोग किया जाता है, मापनी-II (Scale-II) आठ से तेरह वर्ष की आयु वाले तथा औसत वयस्कों के लिए प्रयोग होता है तथा मापनी III (Scale-III) हाईस्कूल के छात्रों कॉलेज के छात्रों तथा 14 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों पर प्रयोग किया जाता है। इन तीनों तरह की मापनी द्वारा सामान्य मानसिक क्षमता कारक, जिसे स्पीयरमैन ने g-कारक (g-factor) कहा है, का मापन कर सकता है।

4.रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज:- इस परीक्षण का निर्माण रैवेन ने 1938 में किया था। इस परीक्षण के दो फार्म हैं - एक बच्चों के लिए तथा दूसरा वयस्कों के लिए। बच्चों के लिए प्रयोग होने वाले फार्म को रंगीन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज कहा जाता है तथा वयस्कों के लिए प्रयोग होने वाले मैट्रिसेज के स्टैण्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज कहा जाता है।

5. कुछ प्रमुख भारतीय बुद्धि परीक्षण:- बुद्धि मापने का प्रयास भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी काफी अधिक किया गया है, जिनमें प्रमुख है - डॉ.एम.सी. जोशी द्वारा मानसिक योग्यता 1960, डॉ.प्रयास मेहता द्वारा सामूहिक बुद्धि परीक्षण 1962, डॉ.. आर.के. टण्डन द्वारा सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण 1971, प्रो. आर.के. ओझा तथा प्रो. राय चौधरी द्वारा वाचिक बुद्धि परीक्षण 1971, डॉ.एस.एस. जलोटा द्वारा मानसिक योग्यता की संशोधित सामूहिक परीक्षा 1972 तथा डॉ.एम.एस. मुहसिन द्वारा सामान्य बुद्धि परीक्षण 1943। ये सभी बुद्धि परीक्षण शाब्दिक बुद्धि परीक्षण है, जिनका उपयोग सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों की बुद्धि मापने में किया जाता है, जो पढ़े-लिखे हैं तथा जिन्हें भाषा का ज्ञान है, क्योंकि इनके एकांशों तथा निर्देश हिंदी भाषा में एक पुस्तिका में छपे होते हैं, जिन्हें परीक्षार्थी को पढ़कर समझना होता है।

2.4.4. बुद्धि के मापन से जुड़े प्रश्न

बुद्धि के मापन से जुड़े अनेक प्रश्न हमारे मन में आते है। जैसे-

- क्या हम बुद्धि को शरीर के तापक्रम की तरह माप सकते है?
- शरीर के तापक्रम को मापने के लिए सेंटीग्रेड इकाई से युक्त थर्मामीटर का उपयोग होता और यह पूर्ण स्वतंत्र इकाई होती है ,यह मापन अत्यधिक विश्वसनीय होती हैं इसके विपरीत बुद्धि को मापने के लिए इस प्रकार की किसी भी पैमाने का उपयोग नहीं किया जता।
- क्या हम बुद्धि को कपडे के टुकड़े की तरह माप सकते है?
- बुद्धि जिसे हम मापना चाहते हैं कपडे की तरह की वस्तु नहीं हैं। इसका कोई मूर्त स्वरुप नहीं होता हैं1 यह अपने आप में एक विचार या अवधारणा मात्र हैं। अतः इसका मापन नहीं हो सकता हैं।
- हम बुद्धि परीक्षा से बुद्धि का परीक्षण कैसे कर सकते हैं?
- सामान्य तौर पर बुद्धि परीक्षा के लिए परीक्षण का उपयोग किया जाता है जिसमे 'परीक्षा पुस्तिका, उत्तर कापियाँ, उत्तरों के मूल्यांकन के लिए अंक तालिका और परीक्षा निर्देशिका हेट है। परीक्षा पुस्तिका में पूर्तियों को हल करने के निर्देश होते हैं। इन पूर्तियों के हल उत्तर पुस्तिका में होता हैं। उत्तरों के मूल्यांकन के लिए अंक तालिका को देखा जाता है। जिसके उपरांत परिणाम को बुद्धि के रूप निष्कर्ष दिया जाता हैं।
- बुद्धि लब्धि क्या है और इसे कैसे मापा जा सकता है?
- विलियम स्टर्न ने सबसे पहले इसका प्रयोग किया। स्टर्न ने अनुभव किया कि यदि छ: वर्ष का बच्चा दस वर्ष की आयु के बच्चे के सामान कार्य करता है तो वह अपनी आयु के औसत बच्चो से 10/6 अर्थात1.66 दर्जे अधिक बुद्धिमान होगा अर्थात व्यक्ति के मानसिक विकास

को मापने के लिए उन्होंने मानसिक आयु/वास्तविक आयु अनुपात बनाया और उसे बुद्धि लब्धि की संज्ञा दी1 दशमलव अनुपात को दूर करने के लिए उन्होंने अनुपात को 100 गुणा करने का नियम बनाया और इस I.Q निकालने का निम्न सूत्र बन गया -

बुद्धि लब्धि (I.Q) = मानसिक आयु/वास्तविकX100

2.4.5. बहुबुद्धि सिद्धान्त

हावर्ड गार्डनर ने 1983 में बहु-बुद्धि सिद्धान्त नामक बुद्धि के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। गार्डनर ने कहा बुद्धि का सिद्धान्त एकाकी न होकर बहु प्रकारीय होता है। उन्होंने सात प्रकार की बुद्धि के बारे में बताया और कहा कि ये सातों बुद्धि एक दूसरे से स्वतंत्रहोती है एवं प्रत्येक के क्रियाशील होने के ढंग अलग अलग होते हैं। बुद्धि के ये निम्न सात प्रकार है -

1. भाषायी बुद्धि - इससे तात्पर्य शब्दों व वाक्यों की बोध क्षमता से है।
2. तार्किक गणितीय बुद्धि - इससे अभिप्राय तर्क करने की क्षमता व अंको की बोध आदि से है।
3. स्थानिक बुद्धि - इससे तात्पर्य स्थानिक चित्रण व कल्पना शक्ति से है।
4. शरीर –गति की बुद्धि - इससे तात्पर्य शारीरिक गति पर नियंत्रण करने व उसमे प्रवीणता लाने की क्षमता से है।
5. संगीतीय बुद्धि - इससे तात्पर्य तारत्व व लय को समझने एवं संगीत सामर्थ्यता व निपुणता से है।
6. वैयक्तिक आत्म बुद्धि - इसमें अपने भावों एवं संवेगों को नियंत्रित करने, विभेद करने तथा स्वयं के व्यवहार को निर्देशित करने की क्षमता समाहित होती है।
7. वैयक्तिक पर बुद्धि - इससे तात्पर्य अन्य व्यक्तियों की इच्छा, अपेक्षा, आवश्यकता आदि को समझने तथा दुसरो के व्यवहार का पूर्व कथन करने की क्षमता आदि से है।
8. गार्डनर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में इन सातों तरह की बुद्धि होती है परन्तु वंशानुक्रम तथा वातावरण के अभाव में इसमें से कोई एक या अनेक प्रकार की बुद्धि अधिक विकसित होती है। गार्डनर का यह सिद्धान्त बताता है कि ये सातों प्रकार की बुद्धि परस्पर अंतर्क्रिया करती है फिर भी वे मुख्यता स्वतंत्र रूप से कार्य करती है। यही कारण है कि कोई व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में प्रखर होने के बावजूद अन्य क्षेत्र में असफल हो सकता हैं। गार्डनर का यह सिद्धान्त इस बात की ओर आकर्षित करती है कि बुद्धि को मात्र भाषा, गणित व कौशल के रूप में न देखकर विस्तृत अर्थो में समझने की आवश्यकता है।

अपनी प्रगति की जाँच।

1.बुद्धि की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

____

2.बुद्धि मापन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

____

3.बहुबुद्धि के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

____

2.5. सीखने के तरीके

शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत सीखने का महत्व सबसे अधिक है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर अवतीर्ण होता है। संसार का प्रत्येक व्यक्ति, प्राणी अपने मानसिक विकास के अनुसार सीखता है। मनुष्य सबसे अधिक विकसित है। अतः वह अन्य प्राणियों से अधिक सीखता है। इस प्रकार सीखना प्राणी की वह क्रिया है, जिसके द्वारा वह अपने को वातावरण के अनुकूल बनाता है। स्किनर के अनुसार ''सीखना, व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया क्रो व क्रो के अनुसार "सीखना-आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है। थार्नडाइक के अनुसार" उपयुक्त अनुक्रिया के चयन तथा उसे उत्तेजना से जोड़ने को अधिगम कहते हैं।

किसी नई क्रिया या नए पाठ को सीखने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें से कुछ विधियों जो मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर अधिक उपयोगी है -

करके सीखना - स्मृति का स्थान मस्तिष्क में नहीं, वरन शरीर के अवयवों में हैं, यही कारण है कि हम करके सीखते हैं। जैसे- बालक जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे वे जल्दी सीखते हैं। कारण यह है कि उसे करने में वे उसके उद्देश्य का निर्माण करते हैं उसको करने की योजना बनाते हैं और योजना को पूर्ण करते हैं।

निरीक्षण करके सीखना - बच्चे जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते हैं। इसका कारण यह है कि निरीक्षण करते समय वे उस वस्तु को छूते हैं या प्रयोग करते हैं या उसके बारे में बातचीत करते हैं।

परीक्षण करके सीखना - नई बातों की खोज करना एक प्रकार का सीखना है। बालक इस खोज को परीक्षण द्वारा कर सकता है। जैसे- पानी का भाप में परिवर्तित होना। वह इस बात को पुस्तक में पढ़कर भी सीख सकता है, पर वह सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं होता है, जितना की स्वयं परीक्षण करके सीखना।

सीखने की इच्छा - यदि बालक में सीखने की इच्छा विकसित कर दी जाए या बालक किसी क्रिया को सीखने का संकल्प कर ले तो अधिगम सुगम हो जाता है। सीखने की इच्छा रखने वाला बालक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सीख सकता है।

सीखना आनन्दमय होना चाहिए - व्यक्ति उन बातों को याद रखते हैं जो उनके अनुभवों में आनन्द देने वाली होती है। अनेक प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि जो बात कष्टदायक होती है उसे हम भूलना चाहते हैं। अतः शिक्षण में आनन्द प्रदान करने वाली बातें अधिगम को उन्नत करती हैं।

अभ्यास - जब किसी कार्य का बार-बार अभ्यास किया जाता है तो वह अच्छी प्रकार या ढंग से सीख लिया जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि त्रुटिपूर्ण अभ्यास को बार-बार दोहराया जाएगा तो गलत भी सीख लिया जाएगा।

पुरस्कार एवं दण्ड - पुरस्कार और दण्ड अधिगम को प्रभावी करने के प्रधान साधन हैं। पुरस्कार और दण्ड उसी वर्ग में आते हैं, जिसमें प्रशंसा और भ्रत्सना को सम्मिलित किया जाता है। पुरस्कार और दण्ड दोनों का उद्देश्य भावी व्यवहार पर अनुकूल प्रभाव डालता है, लेकिन दोनों की विधियाँ पृथक-पृथक हैं। पुरस्कार का उपयोग करने पर बालक को आनन्दानुभूति होती है, जबकि अवांछित कार्य को रोकने के लिए दण्ड का उपयोग होता है तो इससे बालक को पीड़ा की अनुभूति होती है। पुरस्कार का प्रयोग अधिगम को उन्नत करने हेतु किया जाता है।

ध्यान, रूचि और उत्साह पैदा करके - कक्षा में बालक का ध्यान सीखने की क्रिया में केन्द्रित करना अधिगम को प्रभावी बनाने का महत्वपूर्ण साधन है। ध्यान को केन्द्रित करने में रूचि और उत्साह का अधिक योगदान रहता है। अध्यापक को सदैव बालकों में आन्तरिक रूचि विकसित करने पर ध्यान देना चाहिए।

सम्मेलन व विचार गोष्ठी विधियाँ - इन विधियों में किसी विशेष पर छात्रों द्वारा विचार-विनियम किया जाता है।

सीखने के कार्य को सरल और सफल बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है सीखने की स्थिति का संगठन। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब विद्यालय का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि उसमें सीखने की सभी क्रियाएँ उपलब्ध हों और सीखने की सभी विधियों का प्रयोग किया जाए।

अपनी प्रगति की जाँच 2

4.सीखने के तरीको का उद्धरण सहित वर्णन कीजिए 1

____

____

2.6. 1. स्मृति

स्मृति से तात्पर्य पूर्व अनुभूतियों को मस्तिष्क में इकट्ठा कर रखने की क्षमता होती है। संज्ञानात्मक, मनोवैज्ञानिकों जैसे- लेहमैन, लेहमैन एवं बटरीफील्ड ने स्मृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि विशेष समयावधि के लिए सूचनाओं को संपोषित करके रखना ही स्मृति है। भाषा, दृष्टि, श्रवण, प्रत्यक्षीकरण, अधिगम तथा ध्यान की तरह स्मृति भी मस्तिष्क की एक प्रमुख बौद्धिक क्षमता है। हमारे मस्तिष्क में जो कुछ भी अनुभव, सूचना और ज्ञान के रूप में संग्रहित हैं वह सभी स्मृति के ही विविध रूपों में व्यवस्थित रहता है।

वुडबर्थ के अनुसार जो बात पहले सीखी जा चुकी है, उसे स्मरण रखना ही स्मृति है।

रायबर्न के अनुसार अपने अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने के कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में पुनः लाने की जो शक्ति हममें होती है उसी को स्मृति कहते हैं।

स्मृति की प्रकृति

स्मृति किसी भी व्यक्ति का प्रमुख अंग होता है। स्मृति व्यक्ति के सीखने की प्रथम इकाई कही जाती है। स्मृति मानव मस्तिष्क में संचित ज्ञानराशि का वह कोश है, जो हमारे मस्तिष्क में पूर्ण ज्ञान, अनुभूतियों, सूचना, अनुभव, घटना, भाषा इत्यादि तथ्यों को मस्तिष्क में इकट्ठा करने की क्षमता रखती है।

स्मृति हमारी याद करने की क्षमता है, स्मृति के सहारे ही व्यक्ति अपने अनुभव, ज्ञान, विज्ञान, घटना आदि तथ्यों को दूसरे व्यक्ति तक संप्रेषित करता है। स्मृति की प्रकृति निम्न है:-

- स्मृति अनुभूतियों को एकत्रित करके रखती है।
- स्मृति का धनात्मक पक्ष तथा ऋणात्मक पक्ष होता है।
- जो बात पहले सीखी जा चुकी है, उसे स्मरण रखती है ।
- अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में पुनः लाने की शक्ति होती।

2.6.2 स्मृति के प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के कई प्रकार बताए हैं। 1968 में एटकिंसन तथा सिफ्रिन ने स्मृति की बहुस्तरीय संग्रह की व्याख्या प्रस्तुत की। इनके अनुसार स्मृति के तीन प्रकार होते हैं- सांवेगिक स्मृति, अल्पकालिक स्मृति और दीर्घकालिक स्मृति।

2.6.2.1. सांवेगिक

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ किसी भी सूचना को वातावरण से ग्रहण करके उसे मस्तिष्क तक पहुंचाने का कार्य करती हैं। बाद में उस सूचना के आधार पर मस्तिष्क द्वारा एक निष्कर्ष निकाला जाता है। हम देखने, सुनने या त्वचा द्वारा सीत या गर्मी की अनुभूति का उदाहरण ले सकते हैं। कोई भी वातावरणीय उद्दीपन जैसे प्रकाश या ध्वनि सबसे पहले अपने सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रिय में बहुत ही कम समय के लिए कूटबद्ध रूप में संग्रहित होता है। यह संग्रहण अत्यल्प समय के लिए होता है। दृष्टि के लिए इसका सीमा 0.5 सेंकंड और श्रवण के लिए इसकी समय सीमा 2 सेकंड के आसपास होती है। इस समय सीमा के पश्चात् इस संग्रहित स्मृति का क्षय हो जाता है। ऐंद्रिक स्तर पर सूचनाएँ अभी प्रारंभिक होती हें और इनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। इनका मस्तिष्क द्वारा संयोजन तथा परिमार्जन अभी बाकी होता है।

2.6.2.2. अल्पकालिक

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाएँ जब हमारे ध्यान में आती हैं तो वे अल्पकालीन स्मृति का भाग बनती हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि संवेदी स्तर की वे सभी सूचनाएँ जिन पर हम ध्यान देते हैं वे समाप्त हो जाती हें। केवल वही सूचनाएँ जिन पर हम एकाग्र होते हैं वे अल्पकालीन स्मृति ‘स्मृतियाँ बनती हैं।

अल्पकालीन स्मृति को क्रियात्मक स्मृति भी कहा जाता है। इस प्रकार की स्मृति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमारे द्वारा कोई फोन नम्बर याद करना है। जब हम किसी नम्बर को देखकर उसे डायल करते हैं तो दो बातें होती हैं। सबसे पहले हम नंबर को देखते हैं और उसे कुछ एक बार दोहरा के याद करते हैं फिर नम्बर डायल करने के बाद सामान्यतः उसे भूल जाते हैं।

2.6.2.2. दीर्घकालिक स्मृति

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि दीर्घकालीन स्मृतियाँ स्थायी होती हैं। हम इस स्मृति का उपयोग बहुत तरीकों से करते हैं। आज सुबह हमने नाश्ते में क्या खाया, परसों हमारे घर कौन-कौन मिलने आये थे, उन लोगों ने कौन से कपड़े पहन रखे थे, हमने अपना पिछला जन्मदिन कहाँ और कैसे मनाया था, हम साईकिल कैसे चला लेते हैं, से लेकर वर्ग पहेली हल करने तक इन सारी गतिविधियों में हमारी यह स्मृति हमारा साथ देती है। इसी प्रकार की स्मृति सबसे अधिक विविध होती है और हमारी भावनाओं, अनुभवों तथा ज्ञान इत्यादि इन सभी रूपों में परिलक्षित होती है। अल्पकालीन स्मृति की सूचनाएँ बार-बार दोहराई जाने के बाद दीर्घकालीन स्मृति बन जाती है। इस स्मृति का क्षय नहीं होता, लेकिन इसमें परिवर्तन हो सकता है।

घटनाओं तथा अनुभूतियों के आधार पर टूलविंग ने दीर्घ-अवधि स्मृति को दो प्रकार में विभाजित किया है:-

प्रासंगिक स्मृति:- इसमें वैसी व्यक्तिगत स्मृति है, जो व्यक्तिगत रूप से अनुभूतियाँ तथा घटनाएँ घटती हैं और हम स्मरण करते हैं कि कब घटा कैसे घटा इत्यादि। जीवन में घटने वाली घटनाएँ जो हमारे मस्तिष्क में संचित रहता है, प्रासंगिक स्मृति कहलाता है। इस तरह की स्मृति बचपन की यादों को ज्यादा संचित करती है।

अर्थगत स्मृति:- इस स्मृति में व्यक्ति शब्दों, संप्रत्यय तथा किसी तथ्य के अर्थ को संचित करके अपने मन मस्तिष्क में रखता है। सामान्य ज्ञान सूचनाओं को मस्तिष्क में संचित करना इसका उदाहरण है।

2.6.2.3. कार्यात्मक स्मृति (वर्किंग मेमोरी)

कार्यात्मक स्मृति को चलन स्मृति के नाम से भी जाना जाता है। चलन स्मृति का प्रतिपादन बेड़ेली द्वारा किया गया था। चलन स्मृति में सूचनाओं को 25-30 सेकंड तक ही संचित किया जाता है तथा उस सूचनाओं को संसाधित भी किया जाता हैं अतः चलन स्मृति उस स्मृति को कहते हैं, जिसमें सूचनाओं का संचयन के साथ-साथ सूचनाओं को संसाधित भी किया जाता है। सूचनाओं का संचयन और संसाधित दोनों प्रक्रिया इस स्मृति में होती है। जब संख्या को देखकर 25-30 सेकण्ड तक याद करते हैं तो लघु स्मृति होगा, परन्तु उसी संख्या को विभिन्न भागों में बांट कर याद करते हैं तो उस प्रक्रिया को चलन स्मृति कहा जाता है। चलन स्मृति, स्मरण के साथ-साथ सूचनाओं को संसाधित करता है। चलन स्मृति के तीन तत्व होते हैं।

1. **ध्वनिग्रामीय लूप:-** स्मृति के इस तथ्य में सूचनाएँ थोड़ी देर के लिए संचित होती है। इनके दो तत्व होते हैं, ध्वनिकोड तथा रिहर्सल जो व्यक्ति स्मरण दिलाती है। ध्वनि कोड तथ्यों का कुछ सेकंड में क्षीण हो जाता है तथा रिहर्सल संचित सूचनाओं को दोहराता है। इसे ही ध्वनिग्रामीय लूप स्मृति क्षमता कहते हैं।
2. **दृष्टि-स्थानिक स्केच पैड:-** यह चलन स्मृति का महत्वपूर्ण अंग है इस स्मृति के द्वारा तत्व दृष्टि तथा स्थानिक सूचनाओं को संसाधित करता है। इसमें वस्तु के रंग, आकार तथा स्थान तथा वो कहाँ उपस्थित है का संसाधन होता है। ध्वनि ग्रामीण लूप तथा दृष्टि स्थानिक स्केच पैड दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। इसमें संख्या का रिहर्सल तथा स्थानिक व्यवस्था होता है।
3. **केन्द्रीय कार्यपालक:-** केन्द्रीय कार्यपालक चलन स्मृति का तीसरा तत्व है यह स्मृति ध्वनिग्रामीय लूप तथा दृष्टि स्थानिक पैड की सूचनाओं समन्वित करता है बल्कि दीर्घकालीन स्मृति की सूचनाओं की भी समन्वित करता है। इस स्मृति के द्वारा सूचनाओं को संग्रहित तथा नियोजित और संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी समस्या का

समाधान करने के समय विभिन्न प्रकार के उपायों का सृजन भी करता है। समाधान तथा सूचनाओं का उपयोग करता है। चलन स्मृति के तीनों तत्व क्षमता सीमित होती है।

अपनी प्रगति की जाँच 3

1. स्मृति से आप क्या समझते है? ये कितने प्रकार के होते है?
2. कार्यात्मक बुद्धि की व्याख्या कीजिए

2.6.3. विस्मरण के कारण

विस्मरण वास्तव में स्मरण के विपरीत को कहा गया है। स्मरण के द्वारा किसी विषय की धारणा बनती है, जबकि विस्मरण के द्वारा उसकी धारणा मिल जाती है। धारणा स्वयं स्मृति चिन्ह पर निर्भर करती है। अतः विस्मरण का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसके कारण स्मृति चिन्ह क्षीण पड़ जाते हैं या मिल जाते हैं।

विस्मरण वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके कारण हम अपनी पूर्व अनुभूतियों को वर्तमान चेतना में लाने में असमर्थ होते हैं।

इस परिभाषा में निम्नलिखित बातें मुख्य हैं:

1. विस्मरण एक मानसिक प्रक्रिया है।
2. इसके कारण स्मृति चिन्ह मिट जाते हैं या दुर्बल बन जाते हैं।
3. फलतः हम अपने पूर्व अनुभवों को वर्तमान चेतना में लाने में असमर्थ हो जाते हैं।

विस्मरण मुख्यतः दो प्रक्रिया होती हैं:-

1. **निष्क्रिय प्रक्रिया:-** डबिंगहास (1885), मानते थे विस्मरण एकमात्र समय का बीतना है, जैसे-जैसे समय बीतता है, विस्मरण की मात्रा बढ़ती जाती है। समयांतराल के कारण विषय के स्मृति चिन्ह दुर्बल होते हैं। विस्मरण कभी भी शत-प्रतिशत नहीं होता है।
2. **एक सक्रिय प्रक्रिया:-** सक्रिय प्रक्रिया को मानने वाले मूलर पिल्जेकर, फ्रायड, वुडबर्थ आदि हैं। इन विद्वानों ने अपने अध्ययनों के आधार पर डविंगहास के विचारों का खण्डन किया और बताया कि भूलने का कारण समय अन्तराल नहीं है, बल्कि उस समय अन्तराल में होने वाली घटनाएँ एवं क्रियाएँ हैं।

   विस्मरण को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:-

समय अन्तराल:- अधिगम तथा धारण के बीच समय अन्तराल जितना अधिक होता है धारण की मात्रा उतनी ही कम होती जाती है तथा विस्मरण की मात्रा उतनी ही बढ़ती जाती है। इबिगहास ने

विस्मरण के क्षेत्र में सम्भवतः सर्वप्रथम प्रयोगात्मक अध्ययन किए तथा पाया कि सीखने के उपरान्त विस्मरण तीव्रगति से प्रारंभ हो जाता है। उसने देखा कि लगभग दस घण्टे में व्यक्ति सीखी गयी निरर्थक सामग्री का 60 प्रतिशत से अधिक भाग भूल जाता है। बाद के अध्ययनों में भी लगभग इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए।

अधिगम स्तर:-

अधिगम की जाने वाली विषयवस्तु का अभ्यास जितना अधिक बार किया जाता है। उसका धारण उतना ही अधिक होता है, जिसके फलस्वरूप उसका स्मरण अधिक होता है तथा विस्मरण कम होता है। अनेक अध्ययनों ने सही कर दिया है कि एक निश्चित सीमा तक अधिगम की मात्रा अर्थात् पुनरावृत्ति जल्दी पद्धति पर धारण की मात्रा भी तीव्र गति से बढ़ती है, परन्तु उस सीमा के उपरान्त अधिगम की मात्रा बढ़ाने पर धारण उसी अनुपात में नहीं बढ़ती है।

पाठ्यवस्तु की सार्थकता:

अधिगम की गई विषयवस्तु की सार्थकता अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती है। सार्थक विषयवस्तु का अधिगम शीघ्र होता है, वस्तुतः अधिगम जितना सरल, सहज तथा तीव्र गति से होता है। उसका स्मरण उतना अधिक होता हे। जबकि विस्मरण उतना ही कम होता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि निरर्थक सामग्री का विस्मरण अधिक होता है।

अन्य कारक:-

स्मरण को अनेक अन्य मनोवैज्ञानिक कारक जैसे- इच्छा, अधिगम वातावरण, मानसिक स्थिति, अभिप्रेरणा, सीखने की विधि आदि भी प्रभावित करते हैं। विषय सामग्री के अधिगम में अथवा उसे स्मरण रखने में रूचि न होने पर उस विषय सामग्री का विस्मरण अधिक शीघ्रता से होता है। जिस कार्य को व्यक्ति जितनी कम रूचि, ध्यान, इच्छा तथा अभिप्रेरणा से सीखता है, उसको वह उतना ही शीघ्र भूल जाता है।

संवेगात्मक दशाएँ:-

जैसे- भय, क्रोश, स्नेह आदि स्मरण- विस्मरण को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति की मानसिक स्थिति का भी स्मरण शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। मानसिक दण्ड, मानसिक आघात अथवा मानसिक रोग आदि विस्मरण को बढ़ावा देता है। सक्रिय विधि से सीखा हुआ ज्ञान शीघ्र ही विस्मृत हो जाता है। सुखद वातावरण में सीखी गई बातें अधिक समय तक स्मरण रहती हैं, जबकि दुःखद वातावरण में सीखी गई बातों को व्यक्ति जल्दी विस्मृत कर देता है।

2.6.4. स्मृति बढ़ाने की युक्तियाँ

स्मृति को उन्नत बनाने के लिए प्रविधियों में निम्नलिखित प्रमुख है -

- **आधिक्य सीखना**-किसी विषय या पाठ को पूरी तरह सीख लेने के बाद भी सीखनें के लिए अभ्यासजारी रखना चाहिए।
- **बाधा को कम करना** - सीखने की पारिस्थिति से बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों को यदि हटा दिया जाता है तो इससे सीखे गए पाठ की स्मृति अपने आप अच्छी हो जाती है।
- **स्मृति सहायक प्रविधियां** - राइम, चंकिंग, परिवर्णी शब्द तथा पंक्तियाँ आदि कुछ साधारण स्मृति सहायक प्रविधियां हैं जिनके उपयोग से स्मृति उन्नत हो सकती है। जैसे- WHO, VIBGYOR आदि।
- **विस्तार एवं संकेतीकरण** - जब किसी पथ की विस्तृत ढंग से व्याख्या की जाती है तो व्यक्ति उसे ठीक ढंग से याद करता है क्योंकि उसमे एकांशो के बीच बहुत सारे सम्बन्ध स्थापित किया जाना संभव होता है।
- **PQRST विधि** - इस विधि का मुख्य उद्देश्य पाठ्य पुस्तक की सामग्रियों का छात्रों द्वारा अध्ययन करने तथा स्मरण करने की क्षमता को बढ़ाना हैं।

P- Preview (पूर्व दर्शन)

Q- Question (प्रश्न)

R- Read (पढ़ना)

S- Self - recitation (आत्म प्रपठन)

T- Test (जाँच)

स्मृति बढ़ाने के लिए वूडरो ने निम्न सात तरीके दिए हैं -

- यथा संभव पूर्ण विधि एवं विराम विधि से सीखना चाहिए।
- सीखते समय अपने आप को जाँचते रहना चाहिए। विषय के सदृश्य अंशो को संगठित करके तथा उसमे सामंजस्य स्थापित करके सीखना चाहिए।
- विषय को उसका अर्थ समझकर सिखाना चाहिए।
- सिखाते समय मानसिक सतर्कता बनाये रखना चाहिए।
- गौण सह्चर्यो के प्रयोग करना चाहिए।

अपनी प्रगति की जाँच 4

7. विस्मरण को प्रभावित करने वाले कारको को स्पष्ट कीजिए।

8.स्मृति बढ़ाने की युक्तियों का वर्णन कीजिए।

2.7. सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य इस बात पर जोर देता है कि बच्चा स्वयं ही जगत के ज्ञान तथा समझ का निर्माण करता है। इस ज्ञान के निमित्त का आधार उसके अनुभव तथा उन अनुभवों पर किया जानेवाला आत्मालोचन है। इस परिप्रेक्ष्य में जोर इस तथ्य पर है की किसी पाठ या विषय-वस्तु को बच्चे के वास्तविक जगत के अनुभवों से जोड़कर पढाया जाए जिससे बच्चा स्वयं विषय-वस्तु के अर्थ या अवधारणा का निर्माण कर सके।

इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना ज्ञान का हस्तानान्तरण नहीं वरन ज्ञान का पुनर्निर्माण है। निर्माणवादी विचारकों का मत है कि सीखने की प्रक्रिया में बच्चा कोई स्लेट नहीं जिसपर ज्ञान लिखा जाय। वे अपने पूर्व निर्मित ज्ञान, विचारों तथा समझ के साथ अधिगम परिस्थितियों में आते हैं। यह पूर्व निर्मित ज्ञान कच्ची सामग्री है जिस पर वे नए ज्ञान का निर्माण करेंगे। हमने वैयक्तिक निर्माणवाद पर चर्चा की. वैयक्तिक निर्माणवाद इस बात पर जोर देता हैं कि बच्चा कैसे अपने विचार, अवधारणा तथा आत्म-संप्रत्यय के आधार पर अपने वातावरण या दुनिया का अनुभव करता है, जिसमें वह रहता है। वैयक्तिक निर्माणवाद ऐसे शिक्षाशास्त्रीय प्रविधियों तथा युक्तियों को समावेशित करता है जो बच्चे के अभिरुचि तथा आवश्यकताओं का समर्थन करते हैं तथा उसके संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देते हैं। यह अधिगम का असान्दर्भिक उपागम (Decontextualised Approach) है, जहाँ बच्चे का विकास एक जैव वैज्ञानिक प्रक्रिया माना जाता है जो सभी बच्चों के लिए लगभग समान होता है, इसमें उनके जाती, वर्ग, वंश या सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती तथा बच्चा सामाजिक संसार में ज्ञान का निर्माण व्यक्तिगत रूप से करता है। इसके विपरीत सामाजिक निर्माणवादी ज्ञान के निर्माण की उत्पत्ति सामाजिक अंतःक्रिया को मानते हैं, जहाँ वे अपने विचारों तथा अनुभवों को साझा करते हैं, तुलना करते है तथा वाद-विवाद करते हैं। इस सामाजिक अंतःक्रिया में प्रशिक्षु (सीखनेवाला) एवं परामर्शदाता (शिक्षक) के मार्गदर्शन में उत्तरोत्तर अधिक जटिल समझ एवं कौशल तथा अंततः स्वतंत्र क्षमता का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया में सीखनेवाला अपने अर्थ को परिष्कृत करता है तथा दूसरों को भी उनके अर्थ को ढूँढने में सहायता करता है।

बुद्धि के स्वरूप का वर्णन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार किया है। वैश्लर के अनुसार बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है। बुद्धि मापन के सम्बन्ध में क्रो एण्ड क्रो ने यह कहा कि सम्भवतया बुद्धि मापन का कोई भी परीक्षण पूर्ण नहीं है। बुद्धि परीक्षाणों का उपयोग-सर्वोत्तम के चुनाव, विषयों के चयन, बच्चों के वर्गीकरण, बच्चों की भावी सफलता का पूर्वानुमान, शिक्षा में पिछड़ने के कारण का पता लगाने, शैक्षिक अनुसंधानों में, बच्चों की व्यावसायिक योग्यता का अनुमान लगाने के लिए तथा उनकी अधिगम से सम्बन्धित कठिनाइयों को

जानने के लिए किया जाता है। साथ ही स्मृति एक सामान्य पद है, जिससे तात्पर्य पूर्व अनुभूतियों को मस्तिष्क में इकट्ठा कर रखने की क्षमता होती है। स्मृति चिन्हों को संचित करने की अवधि की कसौटी को आधार मानकर स्मृति को वर्गीकृत करने का शुभारंभ हरमान इविंगहास द्वारा 1885 में प्रारंभ किया गया। इस कसौटी के आधार पर स्मृति के निम्नांकित तीन प्रकार का वर्णन किया गया है: संवेदी स्मृति, लघुकालीन स्मृति एवं दीर्घकालीन स्मृति इस इकाई में हमने स्मृति के प्रकार के साथ स्मृति को बढ़ाने की युक्तियों एवं विस्मरण के करण के बारे में भी पढ़ा।

2.9. अभ्यास प्रश्न

- सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- उन शिक्षण शास्त्रीय युक्तियों की चर्चा कीजिए जो सीखने का निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य पर आधारित हैं।
- वैक्तिक निर्माणवाद और सामाजिक निर्माणवाद की तुलना कीजिए।
- बुद्धि के मापन से जुड़ी चुनौतियों की व्याख्या कीजिए।
- बहु बुद्धि के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
- स्मृति के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

2.10. सन्दर्भ ग्रन्थ

- सिंह, ए. के. (2010), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान. जवाहर नगर, भारती भवन, दिल्ली.
- अस्थाना, वी.,**मनोविज्ञान और शिज्ञा में मापन एवं मूल्यांकन**, आगरा.
- एन.सी.ई आर, टी**. (2005**), **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा,** श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली.
- शर्मा, एस.पी एवं शर्मा, एम.,**शिक्षा और मनोविज्ञान में मापन एवं मूल्याकंन,** कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूदर्स, नई दिल्ली.
- दानापानी, एस. (2007),आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
- मंगल, एस.के.(2007), आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, प्रिन्तिस हॉल ऑफ़ इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली.
- माथुर , एस.एस. (2007), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा .

- Cronbach, I.J.(1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed., New York. Harper and Row Publishers.
- Ebel, Robert L,.(1979), Essentials of Psychological Measurement, London. Prentice Hall International Inc.
- Freeman, Frank S. (1962), Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi. Oxford and IBN Publishing Co.
- Kuppuswamy, B. (2006), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
- Thorendike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed, New York. John Wily& Sons Inc.

इकाई - 3
अभिप्रेरणा

इकाई संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

3.4 अभिप्रेरणात्मक चक्र

3.5 अभिप्रेरणा के प्रकार

3.6 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

3.7 अभिप्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ

3.8 सृजनशीलता

3.9 सृजनशीलता की प्रकृति तथा विशेषताएँ

3.10 बच्चों में सृजनशीलता का विकास

3.11 समस्या समाधान

3.12 समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि

3.13 समस्या समाधान की युक्तियाँ

3.14 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

3.15 सारांश

3.16 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

3.17 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप

1. अभिप्रेरणा की प्रकृति को समझते हुए इसके महत्व को जान पाएँगे।
2. यह जानेंगे कि आन्तरिक एवं बाह्य अभिप्रेरणा क्या है एवं अधिगम में यह किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।
3. अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जानेंगे और यह निष्कर्ष निकाल सकेंगे कि इनमें अभिप्रेरणा की अवधारणा किस प्रकार भिन्न है।

4. विद्यार्थियों में रचनाशीलता को विकसित करने की विभिन्न युक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
5. समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि को समझेंगे और विद्यार्थियों में इसका विकास करने के कौशल से परिचित होंगे।

3.2 प्रस्तावना

अभिप्रेरित व्यक्ति कठिन-से-कठिन कार्य को भी करने एवं उसमें सफल होने में सक्षम हो जाता है। इस इकाई में हम अभिप्रेरणा की प्रक्रिया के चक्र को पढ़कर यह जानेंगे कि अभिप्रेरणा किस प्रकार मनुष्य के लिए उपयोगी है। इसके अतिरिक्त अभिप्रेरणा की अवधारणा की व्याख्या व्यवहारवाद, संज्ञानवाद, मानवतावाद एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार की गयी है एवं एक अध्यापक इसे समझते हुए अपने विद्यार्थियों में रचनाशीलता एवं समस्या समाधान के लिए उन्हें कैसे अभिप्रेरित कर सकता/सकती है।

3.3 अभिप्रेरणा की परिभाषा

अभिप्रेरणा या अभिप्रेरणात्मक व्यवहार से तात्पर्य किसी बुनियादी अभिप्रेरक से संचालित ऐसे प्रबलित, चयनित एवं लक्ष्य निर्देशित व्यवहार से होता है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि में सहायक बनकर वातावरण के सन्दर्भ में उसके संतुलन और समायोजन को बनाए रखना होता है।

3.4 अभिप्रेरणात्मक चक्र

अभिप्रेरणा प्राणी की वह अवस्था है जो उसे किसी आवश्यकता के कारण भीतर से संचालित करती है तथा किसी लक्ष्य की ओर उसे निर्देशित करती है ताकि आवश्यकता की संतुष्टि की ओर वह अग्रसर हो सके।

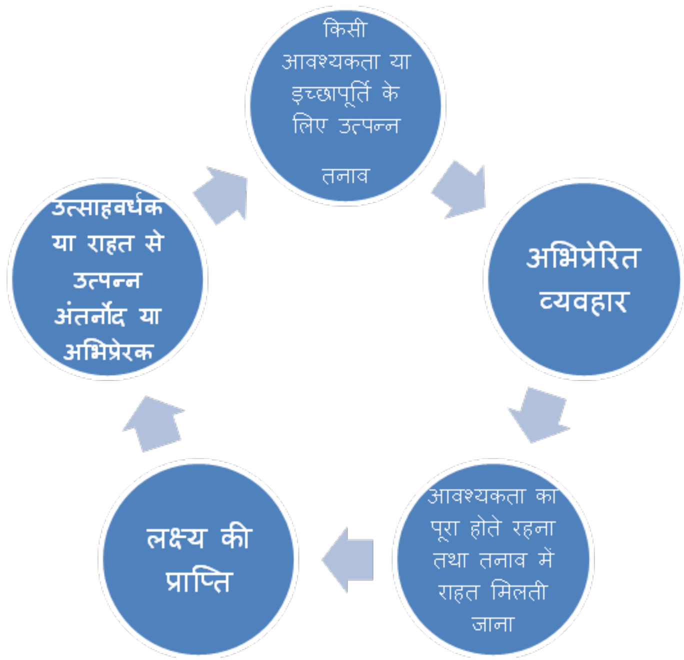

अभिप्रेरणात्मक चक्र

अभिप्रेरणा तथा अभिप्रेरणात्मक व्यवहार एक सतत प्रक्रिया है जिसका वर्णन एक चक्र के रूप में निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

1. व्यवहार का जन्म किसी-न-किसी इच्छा, चाहत तथा आवश्यकता के फलस्वरूप ही होता है। अतः अभिप्रेरणात्मक चक्र का पहला सोपान व्यक्ति में किसी इच्छा या चाहत का जन्म होना है, अर्थात् वह अपनी आवश्यकता से अवगत हो। उसकी यह इच्छा या चाहत पूरी होनी चाहिए। अनुभव की गयी किसी आवश्यकता की संतुष्टि होनी चाहिए। यह बात मन में आते ही उसके अन्दर एक अजीब-सी बेचैनी उत्पन्न हो जाती है। उसका आन्तरिक अथवा बाह्य संतुलन बिगड़ जाता है जिसके कारणवश वह अपने आप से या अपने वातावरण से समायोजित नहीं हो पाता है। यही अवस्था व्यक्ति में अंतर्नोदों (Drives) तथा अभिप्रेरकों (Motives) को जन्म देती है।
2. अंतर्नोद या अभिप्रेरक अब एक शक्तिपुंज, चालक तथा प्रणेता के रूप में व्यक्ति के व्यवहार का संचालन करने के लिए आगे आते हैं। व्यक्ति का व्यवहार अभिप्रेरित व्यवहार बन जाता है। इस व्यवहार में तनाव का समावेश रहता है क्योंकि व्यक्ति को अपनी इच्छा या आवश्यकता पूर्ति की धुन लगी रहती है परन्तु जैसे-जैसे उसका यह अभिप्रेरित व्यवहार आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसे अपनी आवश्यकताओं तथा चाहत के पूरी होने की आशा भी बढ़ती जाती है। फलतः उसके तनाव में भी कमी होती रहती है। धीरे-धीरे वह मंजिल पर पहुँच जाता है और अपने अभिप्रेरणात्मक व्यवहार के सम्पादन के फलस्वरूप उसे निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति होती है। उसके

अन्दर जो भी उथल-पुथल, बेचैनी तथा तनाव था, अब वह इस लक्ष्य-प्राप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है। यहाँ उसके अभिप्रेरणात्मक व्यवहार को थोड़ा-सा विराम मिलता है।

3. अभिप्रेरणात्मक व्यवहार को जो विराम लक्ष्य प्राप्ति के साथ मिलता है, वह किसी भी तरह से पूर्ण विराम नहीं होता है। अभिप्रेरणात्मक चक्र रूपी यात्रा अपनी आगे की मंजिलों पर फिर चलना प्रारंभ कर देती है, क्योंकि जैसे ही व्यक्ति को लक्ष्य की प्राप्ति होती है तथा इसकी प्राप्ति से जो संतुष्टि तथा सुख मिलता है वह उसके व्यवहार को उसी दिशा में आगे पुनर्बलित (Reinforced) करने का साधन बन जाती है। दूसरे शब्दों में उसे अपने व्यवहार को आगे उसी दिशा में बढ़ाते रहने के लिए प्रलोभन तथा प्रोत्साहन (Incentive) की प्राप्ति होती है। इसी प्रोत्साहन के फलस्वरूप उसे फिर एक नई अभिप्रेरणा प्राप्त होती है तथा फिर एक दुगुने जोश और उमंग से भरे हुए अभिप्रेरक का प्रादुर्भाव होता है और उसके व्यवहार को अभिप्रेरित कर नए लक्ष्य की प्राप्ति में व्यक्ति फिर जुट जाता है। कई बार ऐसा होता है कि अभिप्रेरित व्यवहार से व्यक्ति की किसी एक आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति हो जाती है, परन्तु यह पूर्ति उसमें किसी अन्य इच्छा या आवश्यकता की पूर्ति को जन्म दे देती है। मानव इच्छाओं का कोई अंत नहीं होता और आवश्यकताएँ भी एक के पूरा होने पर दूसरी के रूप में आगे खड़ी होती चली जाती हैं। इस तरह से जब व्यक्ति की एक आवश्यकता या इच्छा लक्ष्य-प्राप्ति के साथ पूरी हो जाती है तो इससे उसके उत्साह में अपेक्षित वृद्धि हो जाती है और वह आगे किसी अन्य प्रलोभन का शिकार हो जाता है। इस तरह का प्रलोभन और प्रोत्साहन उसे आगे किसी अन्य तरह के अभिप्रेरकजन्य अभिप्रेरित व्यवहार को अपनाने के लिए विवश करता रहता है।

3.5 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणा को मुख्य रूप से निम्न दो वर्गों में बाँटा जा सकता है:

1. **प्राकृतिक अभिप्रेरणा या आन्तरिक अभिप्रेरणा-** यह अभिप्रेरणा प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की प्राकृतिक इच्छाओं, आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों के साथ सम्बंधित होती है। आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित व्यक्ति किसी काम को इसलिए करता है क्योंकि उस काम को करने में उसे हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। जब कोई विद्यार्थी गणित की किसी समस्या को हल करने में आनंद प्राप्त करता है या किसी कविता के पाठ द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करता है तब वह आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित होता है। विद्यार्थी 'स्वान्तः सुखाय' की भावना से गणित की समस्या हल करता है या कविता का अध्ययन करता है। सीखने में इस प्रकार की अभिप्रेरणा का वास्तविक महत्व होता है क्योंकि इससे स्वाभाविक रुचि उत्पन्न होती है और अंत तक बनी रहती है।
2. **अप्राकृतिक अभिप्रेरणा या बाह्य अभिप्रेरणा-** इस अभिप्रेरणा में आनंद का स्रोत कार्य में निहित नहीं होता है। इसमें व्यक्ति मानसिक प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए काम नहीं करता है,

अपितु किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए या कोई पुरस्कार प्राप्त करने के लिए कार्य करता है। अच्छे ग्रेड या मान के लिए काम करना, जीविकोपार्जन के लिए कोई शिल्प सीखना, प्रशंसा प्राप्ति के लिए काम करना, पुरस्कार एवं दण्ड आदि- सभी इसी वर्ग की अभिप्रेरणा के अंतर्गत आते हैं।

3. बाह्य अभिप्रेरणा की तुलना में आन्तरिक अभिप्रेरणा स्वाभाविक उत्साह और प्रेरणा का साधन है। इसलिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में इसके अच्छे परिणाम निकलते हैं। अतः जहाँ तक संभव हो सके, आन्तरिक अभिप्रेरणा का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु जहाँ तक संभव न हो, बाह्य अभिप्रेरणा का प्रयोग किया जाना चाहिए। अतः सीखने की स्थिति तथा कार्य की प्रकृति के अनुसार अध्यापक को उचित प्रकार की अभिप्रेरणा का प्रयोग करना चाहिए ताकि विद्यार्थी सीखने की क्रियाओं में पर्याप्त रुचि ले सकें।

अपनी प्रगति की जाँच करें

अभिप्रेरणा को परिभाषित करते हुए इसके प्रकार के बारे में संक्षिप्त टिपण्णी कीजिए।

____

अभिप्रेरणात्मक चक्र की व्याख्या कीजिए।

____

3.6 अभिप्रेरणा-सिद्धान्त

अभिप्रेरणा सिद्धान्तों से तात्पर्य उन विचारों तथा संगठित तथ्यों से है जिनके आधार पर अभिप्रेरणा के संप्रत्यय, उसकी प्रक्रिया तथा परिणामों को समझने में सहायता मिलती है। अभिप्रेरणा एक विस्तृत एवं जटिल विषय है जिसके अंतर्गत कई सिद्धान्त आते हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त प्रयोगशाला में जानवरों पर हुए प्रयोगों द्वारा विकसित किए गए हैं, तो कुछ विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य की प्रतिक्रिया पर आधारित शोध द्वारा विकसित हुए हैं जिनमें किसी व्यूहरचना या युक्ति का प्रयोग किया गया हो। मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा से सम्बंधित कई सिद्धान्त दिए हैं। अतः अब हम अभिप्रेरणा के इन विभिन्न सिद्धान्तों के विषय में अपना ज्ञानवर्धन करते हुए जानेंगे कि व्यवहारवाद, मानवतावाद,

संज्ञानवाद एवं सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में इसकी क्या अवधारणायें हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का यहाँ हम विवेचन करने जा रहे हैं:

1. **मैकडूगल का मूल प्रवृत्यात्मक सिद्धान्त (Mc Dougall's Theory of instinct)-** इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे व्यवहार के मूल में हमारी मूल प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं। उदाहरण के रूप में एक माता के अपने बच्चों के लिए लालन-पालन में अथक परिश्रम के मूल में मातृत्व सम्बन्धी मूल प्रवृत्ति कार्य करती है। बच्चों द्वारा अपनी जेबों या थैलों में दुनिया-भर की चीज़ें इकट्ठा कर लेने के पीछे संग्रहात्मक प्रवृत्ति कार्य करती है।
2. **हल का प्रेरक आपूर्ति सिद्धान्त (Hull's Drive Reduction Theory)-** मनोवैज्ञानिक हल के अनुसार अभिप्रेरणा के पीछे प्रेरकों का हाथ रहता है। भूख, प्यास, पीड़ा, मुक्ति तथा काम आदि जैविक प्रेरक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ करने के लिए आगे लाते हैं। इनकी आपूर्ति होनी आवश्यक है। व्यक्ति इनकी आपूर्ति के लिए बेचैन रहता है। भूख और प्यास से व्याकुल व्यक्ति से ऐसे सभी व्यवहार की आशा की जा सकती है जो इन प्रेरकों से जुड़ी हुई दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सके। पीड़ा से मुक्ति भी इसी प्रकार की बात है। दैहिक कष्ट से बचने की दृष्टि से कई तरह के व्यवहार किए जाते हैं। उसी प्रकार काम जैसी प्रेरक शक्ति के वशीभूत होकर और उससे उत्पन्न बेचैनी को कम करने के लिए भी मानव व्यवहार एक विशेष दिशा पकड़ लेता है और इस प्रकार प्रेरकों द्वारा उत्पन्न बेचैनी को कम करने के लिए अपेक्षित व्यवहार संपन्न होते रहते हैं।
3. **फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Freud's Psychoanalytic Theory)-** फ्रायड के अनुसार हम जो व्यवहार करते हैं उसकी अभिप्रेरणा के स्रोत चेतन स्तर पर न होकर अचेतन (Unconscious) और अर्धचेतन (Semi-conscious) स्तर पर ही अधिक उपस्थित होते हैं। हमारी दमित इच्छाएँ तथा अतृप्त अभिलाषाएँ मन की भीतरी गहराइयों में छुपी रहती हैं और हमारा अचेतन और अर्धचेतन मन वहीं से हमारे व्यवहार को इस तरह संचालित करता है कि हमारी दबी हुई इच्छाओं तथा अतृप्त अभिलाषाओं की पूर्ति होती रहे। यौनेच्छा (Sex drive) व्यवहार के अभिप्रेरण में बहुत अधिक भूमिका निभाती है और जिस व्यवहार से काम यानी सुख और आनंद की अनुभूति होती है, मानव मन उसी को बार-बार करना चाहता है। इस प्रकार फ्रायड के इस सिद्धान्त को सुखवादी (Hedonistic Principle) भी कहा जाता है। दूसरी ओर, फ्रायड के अनुसार, मानव व्यवहार के मूल में मृत्यु नामक मूल प्रवृत्ति (Death instinct) का भी योगदान रहता है। जब सुख (Pleasure) नहीं मिल पाता है तो उसके विपरीत छोर पर पलायन की भावना जागती है और व्यक्ति मृत्यु के आलिंगन का प्रयास करता है। प्रेम में असफल व्यक्ति का आत्मघात का प्रयास करना इसी प्रकार के व्यवहार में आता है।

4. **व्यवहारवादी अभिप्रेरणा सीखने का सिद्धान्त (Behaviouristic Learning Theory of Motivation)-** इस सिद्धान्त के अनुसार हम वैसा ही व्यवहार करने को अभिप्रेरित होते हैं जैसा कि हमने इसे सीखने के दौरान किया था। जिस प्रकार के उद्दीपन के प्रति हम जिस प्रकार की अनुक्रिया सीख लेते हैं उसी की पुनरावृत्ति करने की हमें अभिप्रेरणा प्राप्त होती है। एक बच्चा जो एक विशेष प्रकार के पुनर्बलन के प्रयोग द्वारा किसी विशेष प्रकार के व्यवहार का आदी हो जाता है वह वैसी ही परिस्थितियों में ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए उन्मुख रहता है।
5. **वेनर का गुणारोपण सिद्धान्त (Weiner's Attribution Theory)-** संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मनुष्य का व्यवहार सिर्फ दण्ड या पुरस्कार पर निर्भर न होकर उसके सोचने-विचारने एवं तर्क करने की क्षमता से भी प्रभावित होता है। योजना, उद्देश्य, स्कीमा (Schemas), अपेक्षाएँ एवं गुण व्यवहार की शुरुआत तथा नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होते हैं। अभिप्रेरणा के संज्ञानात्मक सिद्धान्तों में मानव को जिज्ञासु एवं सक्रिय माना जाता है जो स्वयं की समस्याओं को हल करने के लिए सूचनाओं की तलाश में लगा रहता है। अभिप्रेरणा की संज्ञानवादी व्याख्या की शुरुआत इस अवधारणा से होती है कि मनुष्य अपने और दूसरों के व्यवहार के कारणों को खोजने में लगा रहता है। अतः संज्ञानवादी विचारकों ने आन्तरिक अभिप्रेरणा पर बल दिया है और इसे समझने के लिए बर्नार्ड वेनर का गुणारोपण सिद्धान्त बहुत उचित है। अभिप्रेरणा का गुणारोपण सिद्धान्त यह बताता है कि किस प्रकार व्यक्ति की स्वयं एवं दूसरों से सम्बंधित वर्णन, समर्थन, पक्षपात तथा क्षमा आदि अभिप्रेरणा को प्रभावित करते हैं। वेनर के अनुसार सफलता एवं असफलता के लिए अधिकृत कारणों की व्याख्या तीन आयामों में की जा सकती है:-

- स्थिति या बिन्दुपथ (Locus)- अभिप्रेरणा के कारण की स्थिति व्यक्ति के अन्दर है या बाहर अर्थात् अभिप्रेरणा आन्तरिक है या बाह्य।
- स्थिरता (Stability)- अभिप्रेरणा का कारण समान बना रहता है या परिवर्तित हो सकता है।
- नियंत्रण (Controllability)- क्या व्यक्ति अभिप्रेरणा के कारणों को नियंत्रित कर सकता है।

प्रत्येक सफलता अथवा असफलता के कारणों को इन्हीं तीन परिमाणों में वर्गीकृत किया जा सकता है। वेनर का मत है कि अभिप्रेरणा के लिए इन तीन परिमाणों के महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं क्योंकि ये सम्भावना एवं उपयोगिता को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ- स्थिरता का आयाम भविष्य की संभावनाओं एवं अपेक्षाओं से निकटता से सम्बंधित है। यदि विद्यार्थी अपनी असफलता के लिए स्थिर कारकों जैसे विषय की कठिनाई को कारण मानते हैं तो भविष्य में भी उस विषय में उनके असफल होने की सम्भावना होगी। परन्तु यदि परिणामों के लिए अस्थिर कारकों जैसे भाग्य या मनोदशा को कारण माना जाए, तो भविष्य में अच्छे परिणामों की आशा रख सकते हैं। अभिप्रेरणा के

कारणों की आन्तरिक या बाह्य स्थिति से स्व-सम्मान की अनुभूति गहन रूप से सम्बंधित है। यदि सफलता एवं असफलता को आन्तरिक कारकों से जोड़ा जाए तो सफलता से आत्मगौरव तथा संवर्धित अभिप्रेरणा की प्राप्ति होगी जबकि असफलता से आत्मसम्मान कम होगा। अभिप्रेरकों का नियंत्रण संवेगों जैसे क्रोध, दया, कृतज्ञता या लज्जा से सम्बंधित है। यदि हम अपनी असफलता के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हैं तो हमें ग्लानि की अनुभूति होती है। इसके विपरीत यदि हम अपनी सफलता के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं तो हमें गर्व महसूस होता है। परन्तु यदि हम किसी ऐसे कार्य में विफल होते हैं जिस पर हमारा कोई नियंत्रण ही नहीं है तो हमें क्रोध या शर्म आती है। इसलिए अगर असफलता के लिए सक्षमता की कमी को जिम्मेदार माना जाए, तो इसे हम नियंत्रित नहीं कर सकते हैं और इससे अभिप्रेरणा प्रभावित होती है।

1. **मैसलो का आत्मीकरण का सिद्धान्त (Maslow's Theory of Self-actualisation)-** मैसलो ने अभिप्रेरणा के मूल में मानव की आवश्यकताओं को रखा है। इन आवश्यकताओं को उसने मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए एक चढ़ते हुए क्रम में रखा है। सबसे निचले स्तर पर जैविक आवश्यकताएँ जैसे- भूख, प्यास, यौन तृप्ति आदि होती हैं और उसके आगे अन्य सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की तृप्ति के आगे की सीढ़ी अपनी आत्मा की भूख मिटाने की आती है। कौन व्यक्ति किस स्तर की आवश्यकताओं को अधिक महत्व देना चाहेगा, यह परिस्थितियों और व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर निर्भर करता है। फिर भी जिस स्तर की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं उसके आगे के स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति ही मानव व्यवहार को आगे की दिशा प्रदान करती है। सभी का अंतिम लक्ष्य अपने आत्म से साक्षात्कार करना होता है जो कुछ वह है उसी से अवगत होना तथा उसी को पूर्णता प्रदान करना उसके व्यवहार को नियंत्रित करता है। फलस्वरूप एक कलाकार मन अपनी कला को पूर्णता प्रदान कराने के लिए छटपटाता रहता है और एक शासक सब पर शासन करने की अभिलाषा को साकार करने के लिए सब कुछ दाँव पर लगा देता है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त विभिन्न सिद्धान्त अपने-अपने ढंग से यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि मानव व्यवहार के संचालन की वास्तविक कुंजी किसके हाथ में है। अभिप्रेरणा अगर यह कुंजी है तो इसके पीछे वास्तविक आधार क्या है? मूलभूत प्रवृत्तियाँ यह कार्य करती हैं अथवा जैविक तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का इसमें हाथ रहता है अथवा दमित इच्छाएँ या भावनाएँ ही अपनी तृप्ति के लिए हमें अभिप्रेरित करती हैं। बात केवल एक तरह से ही पूरी नहीं होती है। अतः सभी सिद्धान्तों का समन्वय ही हमें वास्तविक रूप से यह समझाने में सहायक हो सकता है कि हमारे व्यवहार को अभिप्रेरित करने में क्या-क्या बातें सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

2. **अभिप्रेरणा की सामाजिक-सांस्कृतिक अवधारणा-** इसके अंतर्गत समुदायों की गतिविधियों में सहभागिता पर बल दिया गया है। व्यक्ति समुदाय में अपनी पहचान एवं अन्तःसम्बन्धों को बनाए रखने के लिए गतिविधियों में सक्रिय रहता है। उदाहरण के लिए जब हम अपने आप को एक खिलाड़ी, अध्यापक, शिल्पकार, मनोवैज्ञानिक अथवा इंजीनियर के रूप में देखते हैं, तो एक समूह में हमारी एक पहचान होती है। उस समूह में हमारा समाजीकरण बाह्य वैध सहभागिता से केन्द्रीय सहभागिता की ओर अग्रसर होता है। यहाँ बाह्य वैध सहभागिता से तात्पर्य है कि प्रवर्तक (नौसिखिए) किसी समूह के कार्यों में विशुद्ध रूप से अंतर्ग्रस्त होते हैं फिर भले ही उनकी क्षमताएँ कम विकसित हों या उनकी सहभागिता कम हो। वे उस समुदाय के सदस्य के रूप में अपनी पहचान बनाए रखने के लिए उस समुदाय के मूल्यों, रीति-रिवाज़ों एवं क्रियाकलापों को सीखने के लिए अभिप्रेरित रहते हैं। यह अभिप्रेरणा पहचान से आती है और पहचान वैध सहभागिता से।

1.7 अभिप्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ

- इस अभिप्रेरित व्यवहार के मूल में जो शक्ति पुंज या शक्ति स्रोत होता है, वह किसी-न-किसी प्रकार का कोई-न-कोई अभिप्रेरक ही होता है।
- किसी-न-किसी प्रकार की मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का ही लक्ष्य इस व्यवहार का होता है।
- व्यवहार को प्रारंभ करना तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु उसे गति प्रदान करते रहना भी ऐसे व्यवहार की प्रमुख विशेषता है।
- अभिप्रेरित व्यवहार चयनात्मक होता है, वातावरण में उपस्थित किसी उद्दीपन के प्रति कैसी अनुक्रिया की जाए, इसका उपयुक्त चयन इस आधार पर किया जाता है कि उससे सम्बंधित आवश्यकताओं की उचित ढंग से पूर्ति होती रहे।
- अभिप्रेरित व्यवहार परिवर्तनशील भी होता है। व्यक्ति की एक इच्छा या आवश्यकता पूरी होने पर दूसरी सामने आ सकती है तथा अब इसकी आवश्यकता की पूर्ति का लक्ष्य सामने आ सकता है। परिणामस्वरूप अभिप्रेरक तथा अभिप्रेरणा की प्रकृति भी बदलना आवश्यक हो जाता है और अभिप्रेरित व्यवहार के स्वरूप और दिशा में भी परिवर्तन आ सकता है।
- अभिप्रेरित व्यवहार लक्ष्य-निर्देशित होता है। किसी एक निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में ही अभिप्रेरित व्यक्ति जुटा रहता है, परन्तु ऐसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति उसके अभिप्रेरित व्यवहार को नाममात्र का ही विराम देती है, क्योंकि वह फिर अपने नए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित रहना प्रारम्भ कर देता है। इसी को मनोविज्ञान की भाषा में जैसा कि हम आगे जानेंगे, अभिप्रेरणात्मक चक्र का नाम दिया जाता है।
- अभिप्रेरित व्यवहार हमें अपने जीवन में संतुलन लाने एवं समायोजित होने में सार्थक ढंग से मदद करता है। आवश्यकताओं का जन्म, उनकी संतुष्टि के लिए किया गया व्यवहार तथा आवश्यकताओं की पूर्ति इस पूरी प्रक्रिया में अगर तालमेल बना रहता है तो हम अपने आपको समायोजित अनुभव करते हैं और अभिप्रेरित व्यवहार निःसंदेह इस प्रकार के संतुलन और समायोजन में पूरी-पूरी सहायता करता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालें।

____

____

अगले खंड में हम रचनाशीलता के विषय में अपनी समझ को संवृद्ध करेंगे और जानेंगे कि बच्चों में इसका विकास कैसे किया जाए? साथ ही हम इसकी उपयोगिता के बारे में भी पढ़ेंगे।

3.8 रचनाशीलता

रचनाशीलता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की यह योग्यता भी सम्मिलित है जिसके द्वारा वह पूर्व-प्राप्त ज्ञान का पुनर्गठन करता है।

3.9 रचनाशीलता की प्रकृति तथा विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषा तथा रचनाशीलता के क्षेत्र में किए गए विभिन्न अध्ययनों के आधार पर रचनाशीलता की प्रकृति तथा उसकी विशेषताओं का निम्नलिखित रूप से उल्लेख किया जा सकता है-

- रचनाशीलता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ मात्रा में रचनाशीलता अवश्य होती है।
- यद्यपि रचनाशील योग्यताएँ प्रकृति-प्रदत्त होती हैं, परन्तु प्रशिक्षण या शिक्षा द्वारा उनको विकसित किया जा सकता है।
- रचनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा किसी नई वस्तु को उत्पन्न किया जाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वस्तु पूर्णरूप से नई हो। पृथक रूप से दिए गए तत्वों से नए एवं ताज़ा सम्मिश्रण का निर्माण करना, पहले से ज्ञात तथ्यों या सिद्धान्तों का पुनर्गठन करना, किसी पूर्व-ज्ञात शैली में सुधार करना आदि उतने ही रचनाशील कार्य हैं जितना रसायन विज्ञान का कोई नया तत्व ढूँढना या गणित का कोई नया सूत्र खोजना। रचनाशीलता में केवल इस बात के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है कि किसी ऐसी वस्तु की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए जिसका व्यक्ति को पहले से ज्ञान हो।
- कोई भी रचनात्मक अभिव्यक्ति रचनाकार के लिए आनंद तथा संतुष्टि का स्रोत होती है। रचनाकार जो देखता या अनुभव करता है, उसे अपने तरीके से प्रकट करता है। रचनाकार अपनी रचना द्वारा ही अपने आप की अभिव्यक्ति करता है। रचनाकार अपने ही तरीके से वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को देखता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि 'रचना' प्रत्येक व्यक्ति को वही 'अनुभव' एवं वही 'संतोष' प्रदान करे जो रचनाकार को प्राप्त हुआ हो।

- 'रचनाकार' वह व्यक्ति है जो अपने 'अहम्' को इस प्रकार प्रकट कर सकता हो, "यह मेरी रचना है", "यह मेरा विचार है", "मैंने इस समस्या को हल किया है"। अतः निर्माणात्मक क्रिया में अहम् अवश्य निहित रहता है।
- रचनाशील चिन्तन बंधा हुआ चिन्तन नहीं होता है। इसमें अनगिनत विकल्पों तथा इच्छित कार्य प्रणाली को चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। पिटे-पिटाए मार्ग पर चलने से पुनरावृत्ति तो हो सकती है, नया निर्माण नहीं।
- रचनाशील अभिव्यक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। वैज्ञानिक आविष्कार, कविता, कहानी, नाटक आदि लिखना, नृत्य-संगीत, चित्रकला, शिल्पकला, राजनीतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध बनाना आदि में से कोई भी क्षेत्र इस प्रकार की अभिव्यक्ति की आधारभूमि बन सकता है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी रचनाशील की आवश्यकता होती है। अतः जीवन अपने समूचे रूप से रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए असंख्य अवसर प्रदान करता है।
- रचनाशीलता में कौन-से विविध ज्ञानात्मक तत्व शामिल होते हैं? इस प्रकार के उत्तर के लिए अत्यन्त प्रयोगात्मक तथा अनुसंधान की आवश्यकता है। जे.पी. गिल्फोर्ड, टॉरैंस, ड्रैवडाहल आदि कई विद्वानों ने रचनाशीलता के विविध तत्वों को खोजने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप प्रवाहात्मक विचारधारा, मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्ण-चिन्तन, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, सम्बन्धों को देखने तथा बनाने की योग्यता आदि रचनात्मक प्रक्रिया में सहायक माने गए हैं।

3.10 विद्यार्थियों में रचनाशीलता का विकास

रचनाशीलता को पल्लवित एवं पोषित करने के लिए उचित वातावरण एवं देख-रेख की आवश्यकता होती है। यदि इसे उचित प्रशिक्षण, शिक्षा तथा अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर प्रदान न किए जाएँ तो यह व्यर्थ चली जाती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं, रचनाशीलता सार्वभौमिक होती है, इस पर कुछ एक प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं होता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ मात्रा में रचनात्मक योग्यताएँ रखता है।

अतः अध्यापकों तथा माता-पिता के लिए यह आवश्यक है कि वे बच्चों की रचनाशीलता के विकास के लिए उचित वातावरण तथा स्थितियों की व्यवस्था करें। यह समस्या कठिन अवश्य है, परन्तु इसका समाधान भी है। उचित अभिप्रेरणा तथा परिस्थितियों द्वारा रचनात्मक योग्यताओं को विकसित किया जा सकता है। मौलिकता, लचीलापन, प्रवाहात्मक विचारधारा, विविध-चिन्तन, आत्मविश्वास, सतत् परिश्रम, संवेदनशीलता, सम्बन्धों को देखने तथा बनाने की योग्यता आदि कुछ

ऐसी योग्यताएँ हैं जिनका विकास रचनाशीलता के विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है। इन योग्यताओं को विकसित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं:

- **उत्तर देने की स्वतंत्रता-** अक्सर देखा जाता है कि अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने पिटे-पिटाए उत्तर की आशा रखते हैं। इससे बच्चों में रचनाशीलता विकसित नहीं होती है।अतः हमें बच्चों को उत्तर देने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। उन्हें समस्या के समाधान के लिए अधिक-से-अधिक विचारों का चिन्तन करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।
- **अहम् अभिव्यक्ति के लिए अवसर-** “यह मेरी रचना है', “मैंने इसे हल किया है”- यह भावना बच्चों को अधिक संतुष्टि प्रदान करती है। वस्तुतः वे तभी रचनात्मक कार्यों में निश्चित रूप से जुटते हैं जब उनमें उनका अहम् निहित हो अर्थात् जब वे अनुभव करें कि उन्हीं के प्रयासों से ही अमुक रचनात्मक कार्य संभव हो सका है। अतः हमें बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिएँ जिनसे उन्हें अनुभव हो सके कि यह रचना उनके द्वारा ही संपन्न हुई है।
- **मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना-** बच्चों में किसी भी रूप में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। तथ्यों का अंधाधुंध अनुसरण करना, जैसी की तैसी नक़ल कर देना, निष्क्रिय भाव से ज्ञान प्राप्त करना, रटना आदि रचनात्मक अभिव्यक्ति में बाधक होते हैं। अतः इन पर यथासंभव नियंत्रण रखना चाहिए। किसी समस्या का समाधान करते समय या किसी काम को सीखते समय यदि वे अपनी विधियों को परिवर्तित करना चाहते हैं तो उनको प्रोत्साहन मिलना चाहिए।
- **झिझक और डर को दूर करना-** कई बार डर तथा हीन भावना से मिश्रित झिझक रचनात्मक अभिव्यक्ति में बाधा डालती है। कई बार हमने लोगों को यह कहते सुना है “मैं जानता हूँ कि मेरा मतलब क्या है लेकिन मैं दूसरों के सामने लिख या बोल नहीं सकता”। इस प्रकार के डर या झिझक के कारणों को यथासंभव दूर करने का प्रयास करना चाहिए। अध्यापक एवं माता-पिता को चाहिए कि वे इस प्रकार के बच्चों को कुछ कहने या लिखने की प्रेरणा दें।
- **रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए उचित अवसर एवं वातावरण प्रदान करना-** बच्चों में रचनाशीलता को बढ़ावा देने के लिए स्वस्थ एवं उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। सीखने और प्रयोग करने, ज्ञान की निष्क्रिय प्राप्ति या निजी प्रयत्नों द्वारा ज्ञान प्राप्ति एवं निश्चित स्थिरता तथा जोखिम में पर्याप्त संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए। बच्चे की जिज्ञासा तथा सहनशीलता को किसी भी सूरत में दबाना नहीं चाहिए। रचनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने के लिए हम पाठ्य-सहगामी क्रियाओं, सामाजिक उत्सवों, धार्मिक मेलों,

प्रदर्शनी आदि का प्रयोग कर सकते हैं। नियमित कक्षा-कार्य को भी इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है जिससे बच्चों में रचनात्मक चिन्तन का विकास हो।

- **बच्चों में स्वस्थ आदतों का विकास करना-** श्रमशीलता, आत्म-निर्भरता, आत्मविश्वास आदि कुछ ऐसे गुण हैं जो रचनाशीलता में सहायक होते हैं। बच्चों में इन गुणों का निर्माण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति पर हो रही आलोचना के विरुद्ध भी खड़े रहने का भी प्रशिक्षण देना चाहिए। उन्हें यह बात अनुभव करनी चाहिए कि जो कुछ उन्होंने रचा है वह अनुपम है और उसके द्वारा वह चीज़ अभिव्यक्त हो रही है जिसे वे अभिव्यक्त करना चाहते हैं।
- **समुदाय के रचनात्मक साधनों का प्रयोग करना-** बच्चों को रचनात्मक कला केन्द्रों तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक निर्माण केन्द्रों की यात्रा करनी चाहिए। इससे उन्हें रचनाशील कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। कभी-कभी कलाकारों, वैज्ञानिकों तथा अन्य रचनाशील व्यक्तियों को भी स्कूल में आमंत्रित करना चाहिए। इस प्रकार बच्चों के ज्ञान-विस्तार में सहायता मिल सकती है और उनमें रचनाशीलता को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- **अपना उदाहरण एवं आदर्श प्रस्तुत करना-** यह कथन सत्य है कि "अपना उदाहरण सिद्धान्त से अच्छा होता है"। बच्चे हमेशा अनुसरण करते हैं। जो अध्यापक और माता-पिता हमेशा पिटे-पिटाए रास्ते पर चलती हैं, जीवन में खतरे मोल लेकर मौलिकता नहीं दिखाते, कोई नया अनुभव नहीं करते या कोई नया काम नहीं करते वे अपने बच्चों में रचनाशीलता का विकास नहीं कर सकते। अतः उन्हें परिवर्तन, नवीनता तथा मौलिकता में विश्वास करना चाहिए। उनके शिक्षण तथा व्यवहार में सृजनप्रियता की झलक मिलनी चाहिए, तभी वे बच्चों में रचनात्मकता का विकास कर सकते हैं।
- **रचनात्मक चिन्तन के अवरोधों से बचना-** परम्परावादिता, शिक्षण की त्रुटिपूर्ण विधियों, असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, बच्चों में व्याप्त अनावश्यक चिंता एवं कुण्ठा, न बदले जाने वाली स्थिर और परंपरागत कार्य आदतें, पुराने विचारों, आदर्शों और वस्तुओं के प्रति दुराग्रह और नवीन के प्रति भय और विरक्ति की भावना छोटे-छोटे प्रत्येक कार्य में उपलब्धि की उच्च स्तर की माँग, परीक्षा में अधिक अंक अर्जित करने के कार्य को सर्वोच्चता, शिक्षकों और अभिभावकों का बच्चों के प्रति निरंकुश और तानाशाही दृष्टिकोण, बच्चों को लीक से हटकर सोचने या कार्य करने को निरुत्साहित करना आदि ऐसे अनेक कारण और परिस्थितियाँ हैं जिनसे बच्चों में रचनाशीलता के विकास और पोषण में बाधा पहुँचती है। अतः अध्यापक और

अभिभावकों का यह कर्तव्य है कि वे वे रचनात्मकता के शत्रु इन सभी कारणों और परिस्थितियों से बच्चों की रचनात्मकता को नष्ट होने से बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न करें।

- **पाठ्यक्रम का उचित आयोजन-** पाठ्यक्रम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विद्यालय पाठ्यक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि वह बच्चों में अधिक-से-अधिक रचनाशीलता विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके। निम्न उपाय इस दिशा में अधिक लाभप्रद हो सकते हैं:
- तथ्यों की अपेक्षा संप्रत्ययों को पाठ्यक्रम के आयोजन का आधार बनाया जाना चाहिए।
- सभी बच्चों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर बच्चों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति को ही पाठ्यक्रम द्वारा प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- "सत्य की खोज की जाती है, वह स्वयं ही प्रकट नहीं होता"। इस दार्शनिक दृष्टिकोण को पाठ्यक्रम के चयन और आयोजन में विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम काफी लचीला होना चाहिए और उसमें परीक्षा और मूल्यांकन की आवश्यकता से परे हटकर कुछ और पढ़ने-पढ़ाने एवं करने की पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए।
- संक्षेप में पाठ्यक्रम का आयोजन सब प्रकार से इस तरह किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा रचनाशीलता में सहायक विभिन्न गुणों- प्रवाहात्मकता, लचीलापन, मौलिकता, विविधतापूर्ण चिन्तन, अन्वेषणशीलता और विस्तारीकरण आदि के विकास में भरपूर सहयोग मिल सके।
- **मूल्यांकन प्रणाली में सुधार-** जो कुछ भी विद्यालय में पढ़ा और पढ़ाया जाता है वह सब प्रकार से परीक्षा केन्द्रित होता है। अतः जब तक परीक्षा और मूल्यांकन के ढांचे में अनुकूल परिवर्तन नहीं आता तब तक किसी भी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा रचनाशीलता का पोषण नहीं किया जा सकता है। इसके लिए हमें रटन्त स्मृति (Rote memory) केन्द्रित और एक-विध चिन्तन (Convergent thinking), घिसे-पिटे एक से उत्तर अथवा अनुक्रियाओं की माँग आदि रचनात्मकता को नष्ट करने वाली बातों के स्थान पर परीक्षा प्रणाली में उन सभी बातों का समावेश करना चाहिए जिनके द्वारा विद्यार्थियों को ऐसे अधिगम अनुभव अर्जित करने के लिए प्रोत्साहन मिले जो रचनाशीलता का पोषण और विकास करते हैं।
- **रचनाशीलता के विकास के लिए विशेष तकनीकों का प्रयोग-** रचनाशीलता के क्षेत्र में कार्य कर रहे अनुसंधानकर्ताओं ने बच्चों में रचनात्मकता के विकास के लिए जिन विशेष तकनीक एवं विधियों का उपयोग उचित ठहराया है, इनमें से कुछ का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं:-

i. **मस्तिष्क उद्वेलन (Brain storming)-** मस्तिष्क उद्वेलन एक ऐसी तकनीक एवं विधा है जिसके द्वारा किसी समूह विशेष से बिना किसी रोक-टोक, आलोचना, मूल्यांकन या निर्णय की परवाह किए बिना किसी समस्या विशेष के हल के लिए विभिन्न प्रकार के विचारों एवं समाधानों को जल्दी-जल्दी प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है और फिर विचार-विमर्श के बाद उचित हल एवं समाधान तलाशने का प्रयत्न किया जाता है।

तकनीक की प्रयोग विधि-मस्तिष्क उद्वेलन तकनीक को काम में लाने हेतु बच्चों को एक समूह के साथ बैठाकर किसी समस्या विशेष का समाधान ढूंढने के लिए प्रेरित किया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ समस्याएँ इस प्रकार की हो सकती हैं यथा-विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, देश में बढ़ती जनसंख्या अथवा बेरोज़गारी, 'अलगाववाद' और 'सम्प्रदायवाद की समस्या', 'विद्यालय पुस्तकालय की सेवाओं में सुधार', 'परीक्षाओं में बढ़ती हुई नकल की प्रवृत्ति' आदि। किसी एक समस्या पर बच्चों का ध्यान केन्द्रित करते हुए यह स्पष्ट बता दिया जाता है कि कोई भी बच्चे बिना किसी झिझक या हिचकिचाहट के अपने विचार व्यक्त करने एवं समाधान प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र हैं। वे जितने भी समाधान प्रस्तुत करना चाहें, कर सकते हैं। इस तरह से पूरा का पूरा समूह समस्या विशेष पर समाधानों से युक्त अपने-अपने विचारों तथा सुझावों की एक आंधी सी ला देती है। इसी विचाररूपी आंधी में से रह-रह कर नए-नए समाधानों तथा रचना के रूप में विद्युत् छटा सी कौंधती रहती है और इस तरह सभी बच्चों को रचनात्मक चिन्तन का पूरा-पूरा अवसर मिलता रहता है।

रचनाशीलता के विकास में सहायक इस तकनीक से उचित लाभ उठाने की दिशा में कुछ निम्न बातों पर ध्यान देना विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है:-

- समूह में सभी को विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करने की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। कोई भी विचार या सुझाव सही या गलत नहीं है, बच्चों को यह समझाकर पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा साथ में यह भी बता देना चाहिए कि जिस समय सुझाव आमंत्रित किए जा रहे हों तब बीच में रोका-टोकी या आलोचना आदि कदापि नहीं की जानी चाहिए।
- कोई भी बच्चा समस्या समाधान के लिए जितने विचार एवं विविध तरीके प्रस्तुत करना चाहे, कर सकता है। परंपरागत प्रतिमानों से हटकर असाधारण विचारों (), समाधान और सुझावों को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।
- बच्चों द्वारा सर्वथा नए विचार और बिल्कुल ही अलग प्रकार के समाधान प्रस्तुत किए जाएँ, यह आवश्यक नहीं। वे दूसरों के द्वारा दिए गए विचारों में जितना भी फेर-बदल और परिवर्तन कर सकें अथवा पुराने विचारों एवं संसाधनों को नवीन ढंग से प्रस्तुत कर सकें, ये भी रचना में शामिल होता है अतः ऐसा करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

- अंत में मूल्यांकन और समालोचना का कार्य मिल बैठकर किया जाना चाहिए। जितने भी विचार एवं समाधान बच्चों द्वारा प्रस्तुत किए जाएँ उन्हें लिखित रूप में समूह के सामने रखा जाना चाहिए और उन पर निष्पक्ष रूप से खुलकर चर्चा होनी चाहिए ताकि समस्या समाधान में सहायक उपयुक्त युक्तियों एवं विचारों का ठीक चयन हो सके।

i. **शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग-** शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित कुछ विशेष शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग भी बच्चों की रचनाशीलता के विकास में पर्याप्त योगदान दे सकता है। उदाहरण के लिए, ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि-प्रतिमान संप्रत्ययों को ग्रहण करने के अलावा बच्चों को रचनाशील बनाने में भी सहयोग देता है और इसी तरह सचमैन का पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान (Suchman's Inquiry Training Model) वैज्ञानिक ढंग से पूछताछ करने के कौशल को विकसित करने के अतिरिक्त रचना में सहायक विशेष गुणों को विकसित करने में पर्याप्त सहायता करता है।

ii. **क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग-** खेल-खेल में ही रचनात्मकता का विकास करने की दृष्टि से क्रीड़न तकनीकों का अपना एक विशेष स्थान है। इस कार्य हेतु इन तकनीकों में जो प्रयोग सामग्री काम में लाई जाती है वह शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non-verbal) दोनों ही रूपों में होती है। शाब्दिक सामग्री के अंतर्गत प्रायः निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं:

- जितनी भी गोल वस्तुओं के बारे में आप सोच सकते हैं, उन सभी के नाम बताइए।
- एक चाकू को जितने विभिन्न ढंग से प्रयोग में लाया जा सकता है, उनका उल्लेख कीजिए।
- कुत्ता और बिल्ली किन-किन बातों में समान ठहराए जा सकते हैं, उन सभी बातों को बताइए।

अशाब्दिक क्रीड़न सामग्री के अंतर्गत बच्चों को कोई भी चित्र बनाने, अधूरे चित्र को पूरा करने, किसी डिज़ाइन या नमूने की रचना करने अथवा उसकी व्याख्या करने, ब्लॉक या टुकड़ों की सहायता से दी हुई आकृति या चित्र के अनुरूप कोई प्रतिमान बनाने, रेखाचित्र या कार्टून बनाने और दिए हुए कच्चे माल एवं उपलब्ध उपकरणों की सहायता से कोई विशेष निर्माण अथवा अपनी इच्छानुसार कुछ भी नया बनाने के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार की क्रीड़न सामग्री द्वारा बच्चों को खेल-खेल में ही निर्माण एवं रचना के लिए जो बहुमूल्य अवसर प्राप्त होते हैं उन सभी का उनकी रचनाशीलता के विकास एवं पोषण हेतु पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

रचनाशीलता को परिभाषित करते हुए इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

____

एक अध्यापक के तौर पर आप अपने विद्यार्थियों में रचनाशीलता के विकास के लिए क्या-क्या प्रयास करेंगे?

अभी तक हमने यह जाना कि रचनाशीलता क्या है और किन युक्तियों द्वारा बच्चों में इसका विकास किया जा सकता है। इस इकाई के अंतिम खंड में हम समस्या समाधान के संप्रत्यय के बारे में पढ़ेंगे।

3.11 समस्या समाधान

समस्या समाधान से तात्पर्य व्यक्ति विशेष के द्वारा अपनाई गई उन प्रयोजनपूर्ण तथा गंभीर व्यवहार क्रियाओं से है जिनमें प्रचलित पुराने तरीकों (जैसे प्रयास एवं भूल विधि, आदत निर्माण या अनुबन्ध) के स्थान पर नई तर्कसम्मत एवं वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर समस्या समाधान के मार्ग में आने वाली बाधाओं को पार कर निश्चित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

3.12 समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि

समस्या समाधान की कई विधियाँ हैं जिन्हें व्यक्ति समस्या में निहित कठनाई तथा अपने अनुभव एवं अपनी योग्यता के अनुसार अपनाता है। सरल समस्याएँ पूर्व व्यवहार के द्वारा ही हल कर ली जाती हैं। अधिक कठिन समस्याओं के लिए 'प्रयत्न एवं भूल' विधि को अपनाया जाता है या अंतर्दृष्टि का प्रयोग किया जाता है। एक और विधि भी है जिसे मनुष्य अपनी समस्याओं के समाधान में प्रयोग करता है। इस विधि को वैज्ञानिक विधि कहते हैं। इसमें अग्रांकित चरणों का अनुसरण किया जाता है।

i. **समस्या के प्रति चेतना या जागरूकता (Problem awareness)-** समस्या समाधान की दिशा में पहला कदम समस्या के प्रति उचित चेतना या जागरूकता का होना है। हमें अगर कोई कठिनाई का अनुभव ही नहीं होगा तो हम उसे दूर करने का प्रयास ही क्यों करेंगे। अतः जो हमारी कठिनाई है या उसके सन्दर्भ में हमारे सामने जो समस्या खड़ी हो रही है उसके प्रति हम पूरी तरह सचेत एवं जागरूक होने चाहिएँ। जब तक हमें अपनी आवश्यकताओं अथवा अभिलाषाओं की पूर्ति के सन्दर्भ में किसी बाधा, प्रतिरोध या कठिनाई का अनुभव नहीं होगा, हम उसे समस्या मानकर हल करने की नहीं सोचेंगे। अतः समस्या के प्रति उचित चेतना एवं जागरूकता समस्या समाधान व्यवहार का मूल चरण या प्रारम्भिक कदम माना जाता है।

ii. **समस्या को समझना (Problem understanding)-** जिस तरह की कठिनाई का अनुभव हो, जो बात समस्या के रूप में सामने आए उसकी प्रकृति, स्वभाव, क्षेत्र आदि के परिप्रेक्ष्य में उसका सावधानी से गंभीरतापूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए। जब तक ठीक ढंग से यह मालूम नहीं होगा कि समस्या वास्तव में क्या है, यह किस तरह का समाधान चाहती है, इसके समाधान से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा तब तक समस्या के समाधान हेतु अच्छी तरह आगे नहीं बढ़ा जा सकता। इसलिए समस्या का गहराई से अध्ययन करके उसे समझने के सभी संभव प्रयास किए जाने चाहिए। उसे भली-भांति परिभाषित किया जाना चाहिए। कुछ आगे बढ़ते हुए फिर यह सोचा जाना चाहिए कि पहले क्या कभी ऐसी समस्याओं का सामना किया गया है, अगर नहीं तो यह पहले की समस्याओं से किस रूप में अलग है, आदि।

iii. **सम्बंधित सूचना या आँकड़े एकत्रित करना (Collecting relevant information or data)-** इस सोपान में व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान हेतु जो भी उपयुक्त सूचनाएँ तथा आँकड़े उसे चाहिए उन्हें सभी संभावित उपलब्ध स्रोतों की सहायता से एकत्रित करने का प्रयास करता है। इस कार्य हेतु कभी वह उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करता है तो कभी अनुभवों एवं विषय विशेषज्ञों से परामर्श एवं राय लेता है। इसके अतिरिक्त उसने अब तक जो कुछ भी अध्ययन किया है, जितनी समस्याओं का हल किया है, उसके सन्दर्भ में अपने स्वयं के प्रयत्नों को भी वह समस्या समाधान हेतु आगे रखता है। इस तरह समस्या समाधान की दिशा में उसे जिस स्रोत एवं साधन से भी वांछित सूचना, सहायता, परामर्श, संकेत तथा सुझाव मिलते हैं वह उन्हें एकत्रित करने का प्रयास करता है।

iv. **परिकल्पना या संभव समाधानों को सामने रखना (Formation of hypothesis or possible solutions)-** समस्या के बारे में वह जो भी सार्थक सूचनाएं या आँकड़े एकत्रित करता है उनके और अपने विगत अनुभवों का सहारा लेकर व्यक्ति अब प्रस्तुत समस्या के समाधान हेतु जितने भी रास्ते उसे नज़र आते हैं उन सभी पर विचार करने के लिए उनकी एक सूची बना लेता है। इन संभावित समाधानों को परिकल्पनाएँ (Hypotheses) कहा जाता है। कोई भी परिकल्पना एक प्रकार से समस्या समाधान के लिए किसी एक संभावित हल का प्रतिनिधित्व करती है। समस्या ऐसी भी हल हो सकती है और शायद इसका समाधान ऐसे भी संभव है इस तरह का विचार-मंथन करते हुए उचित सूझ-बूझ, बुद्धि तथा विवेक के आश्रय से ही कोई व्यक्ति संभावित समाधानों की सृष्टि करता है और फिर उनमें से उसे जो सबसे उचित लगता है उसे लेकर समस्या के समाधान की दिशा में पहल करता है।

v. **उचित परिकल्पना या समाधान का चयन (Selection of a proper hypothesis or possible solution)-** जितने भी संभावित समाधान पहले सोपान में व्यक्ति द्वारा समस्या हल हेतु सोचे गए थे उनके बारे में एक-एक करके गहराई से विचार किया जाता है। उनके उचित विश्लेषण

द्वारा यह अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि प्रस्तुत समस्या तथा उपलब्ध परिस्थितियों के सन्दर्भ में किस प्रकार का समाधान सबसे अच्छा रहेगा। गेट्स तथा अन्य विद्वानों ने संभावित समाधानों में से किसी एक समाधान का चयन करने के सम्बन्ध में निम्न तीन सुझाव प्रस्तुत किए हैं:

1. इस बात का पूर्ण निश्चय किया जाना चाहिए कि समाधान पूर्णरूप से समस्या की मांगों को संतुष्ट करे।
2. इस बात का भी निश्चय किया जाना चाहिए कि समाधान पूर्व स्थापित तथ्यों तथा सिद्धान्तों के अनुकूल हो।
3. उन नकारात्मक उदाहरणों की भी खोज की जानी चाहिए जिनसे निष्कर्ष या चयनित समाधान में संदेह उत्पन्न होने की सम्भावना हो।
4. इन तीन चरणों के सन्दर्भ में हमें समाधानों को स्वीकृत एवं अस्वीकृत करते हुए निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। इस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए व्यक्ति विशेष को अपनी समस्त शक्तियों, पूर्व अनुभवों तथा विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं या ज्ञान का गंभीरता से उपयोग करना चाहिए।

निष्कर्षित या चयनित समाधान की पुष्टि (Verification of the selected or arrived solution)- निष्कर्षित या चयनित समाधान उपयुक्त है या नहीं इससे समस्या का उचित समाधान किस रूप में निकला है और वह कितना उपयुक्त है इस बात की ओर अब गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। अगर यह समाधान ठीक है तो इसका उपयोग दूसरी इसी प्रकार की अन्य समस्याओं के समाधान में अवश्य सहायता करेगा यह सोचकर इस समाधान का उपयोग अन्य उसी प्रकार की समस्या के समाधान हेतु किया जाना चाहिए। अगर इसमें सफलता मिलती है तो फिर उस समाधान को आदर्श समाधान मानकर नियम तथा सिद्धान्त की संज्ञा दे देनी चाहिए तथा आगे की समस्याओं के समाधान में उसकी हर संभव सहायता लेनी चाहिए।

3.13 समस्या समाधान की युक्तियाँ

समस्याओं का समाधान, समस्या की प्रकृति, समस्या हल करने हेतु प्राप्त संसाधन, सामग्री तथा स्रोत एवं समस्या हल करने वाले व्यक्ति की योग्यता, क्षमता तथा समस्या समाधान सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं अभ्यास आदि पर निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिकों तथा विद्वानों ने अपने अध्ययन और अनुसंधान के परिणामस्वरूप ऐसी कुछ विशेष व्यूह रचनाओं (Strategies) एवं युक्तियों (Tactics) के उपयोग की सिफारिश की है जिनकी सहायता से समस्या का हल ढूँढने में सहायता मिल सकती है अथवा उसके हल में समय तथा शक्ति के सन्दर्भ में बचत हो सकती है। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण व्यूहरचनाओं तथा युक्तियों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

1. एल्गोरिथम्स (Algorithms)- एल्गोरिथम्स समस्या-समाधान में प्रयुक्त एक ऐसी व्यूह-रचना () है जिसमें समस्या का समाधान तलाश करने के लिए तब तक सभी संभावित उत्तरों या हलों को एक-एक करके परखा जाता है जब तक कि उसका सही उत्तर या हल न निकल जाए। एल्गोरिथम्स सही अर्थों में और कुछ नहीं बल्कि ऐसे निश्चित नियम अथवा कार्य करने के ऐसे निश्चित ढंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी सहायता से चाहे देर या परिश्रम कितना भी लग जाए, समस्या का समाधान हो ही जाता है। इनकी विशेषता ही इस बात में होती है कि इनके द्वारा यांत्रिक ढंग (Measurement way) से समस्याओं का हल निकलता रहे, चाहे इस काम में देर कितनी भी लग जाए।

2. ह्यूरिस्टिक्स (Heuristics)- एल्गोरिथम्स की तुलना में ह्यूरिस्टिक्स इस प्रकार की व्यूहरचना है जिनमें समय तथा शक्ति दोनों ही कम खर्च होते हैं और समस्या का समाधान अपेक्षाकृत आसानी से निकल आता है। परिभाषा के रूप में ह्यूरिस्टिक्स समस्या समाधान में प्रयुक्त ऐसी व्यूहरचनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें कुछ ऐसे निश्चित तथा पूर्व नियत नियमों या धारणाओं का उपयोग होता है जिनसे समाधान निकलने में समय और शक्ति दोनों की ही अधिक-से-अधिक बचत हो।

3. ह्यूरिस्टिक्स के रूप में प्रसिद्ध जिन अनेक व्यूहरचनाओं का प्रायः हम समस्या समाधान के लिए प्रयोग करते रहते हैं उनमें से कुछ उल्लेखनीय नाम निम्न हैं:

i. **उप-लक्ष्य विश्लेषण (Sub-goal analysis)-** इस व्यूह रचना का उपयोग करते हुए हम किसी कठिन समस्या के समाधान सम्बन्धी लक्ष्य को छोटे-छोटे परन्तु सार्थक लक्ष्यों में इस प्रकार विभाजित करने का प्रयत्न करते हैं ताकि इन छोटे-छोटे लक्ष्यों की प्राप्ति आसानी से होती जाए और फिर इस प्रकार अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा जा सके। इस तरह लक्ष्य को कई प्राप्त करने योग्य उपलक्ष्यों में बाँटकर समस्या समाधान के प्रयत्न करना बहुत-सी परिस्थितियों में अच्छे परिणाम लाने वाला सिद्ध हो सकता है।

ii. **साधन-लक्ष्य विश्लेषण (Means-end analysis)-** समस्या समाधान में किसी लक्ष्य तक पहुँचना होता है और उस लक्ष्य तक पहुँचने में साधनों की आवश्यकता होती है। जिन साधनों को अपनाया जा रहा है, जिस रास्ते से मंजिल तक पहुँचने की बात सोची जा रही है उसकी उपयुक्तता, वांछनीयता तथा उचितता का अच्छी तरह विश्लेषण या मूल्यांकन समस्या समाधान कार्य में हमारी अच्छी तरह सहायता कर सकता है। अगर समय-समय पर यह विश्लेषण ऐसे होता रहे कि लक्ष्य कितना है, लक्ष्य की प्राप्ति के हिसाब से साधन कैसे हैं, लक्ष्य कितना बड़ा है, उसके हिसाब से साधन कितने बड़े-छोटे हैं, लक्ष्य की कितनी प्राप्ति हो गई- अब आगे की प्राप्ति हेतु साधनों में क्या परिवर्तन किया जाना चाहिए आदि-आदि बातों का निर्णय लेना ही साधन-लक्ष्य विश्लेषण कहलाता है।

iii. **उल्टा चलना (Working backward)-** समस्या समाधान की इस व्यूहरचना का उपयोग करते हुए समाधानकर्ता समस्या के लक्ष्य या अंतिम पड़ाव से अपनी कार्ययात्रा प्रारंभ करता हुआ समस्या को हल करने से सम्बंधित आरम्भिक स्थिति में पहुँचने का प्रयत्न करता है। अगर कोई समस्या ऐसी है जैसे हम कहीं अपने स्कूटर की चाबी भूल गए हैं, तो इस समस्या के समाधान हेतु हमें पीछे लौटने या उल्टे चलने की व्यूहरचना अपनानी पड़ेगी। जहाँ अब हम हैं उससे पहले कहाँ थे, क्या कर रहे थे, वहाँ किस-किस जगह बैठे थे, उससे पहले कहाँ थे, आदि-आदि स्थितियों पर विचार करते-करते हमें कहीं से थोड़ा-बहुत अंदाजा लग सकता है कि हमारी चाबी वहाँ से मिल सकती है। इस तरह अंतिम परिणाम या लक्ष्य क्या है उसे पहचान कर समस्या समाधान के इस इच्छित अंतिम बिन्दु से शुरू करके हम इस तरह सावधानी से पीछे हटते जाते हैं ताकि हमें समस्या समाधान की प्रारम्भिक स्थिति में पहुँचने में आसानी हो।

iv. **समानता या तुल्यता का उपयोग (Using an analog)-** सादृश्यता का उपयोग करने से सम्बंधित व्यूहरचना एक तरह से पूर्व अनुभव, प्रशिक्षण तथा अभ्यास को आधार बनाकर अपनाई जाने वाली समस्या समाधान व्यूहरचना है। इसमें समाधानकर्ता प्रस्तुत समस्या का सादृश्य अपने विगत अनुभवों या हल की गयी पहले की समस्याओं में खोजता है या नई समस्या का जब वह सामना कर

v. रहा होता है और उसे कोई हल नहीं मिलता तो उसके सामने प्रस्तुत समस्या से मिलती-जुलती किसी ऐसी समस्या को उदाहरण के रूप में रखा जाता है जिसके हल से वह परिचित हो या जिसका हल वह अपने प्रयत्नों से आसानी से निकाल सकता है।

3.14 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

हम सभी किसी-न-किसी रूप में जिन्दगी के हर मोड़ पर विविध प्रकार की समस्याओं का शिकार होते रहते हैं। हमारी हर तरह से यही कोशिश रहती है कि हम समस्या विशेष का शिकार होने पर उसका उचित समाधान खोज निकालें। समस्या समाधान में हमें मिलने वाली सफलता या असफलता के पीछे बहुत-सी बातें कार्य करती हैं। ये वे ही बातें हैं जिन्हें समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों का नाम दिया जाता है। ऐसे कारकों में से कुछ प्रमुख कारकों की चर्चा हम नीचे करने जा रहे हैं।

समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों को हम मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित करके समझ सकते हैं। प्रथम वर्ग में ऐसे कारक होते हैं जिनका सम्बन्ध समस्या विशेष की प्रकृति से होता है तथा दूसरे वर्ग में ऐसे कारक आते हैं जिनका सम्बन्ध समाधानकर्ता की प्रकृति तथा उसके समस्या समाधान सम्बन्धी व्यवहार से होता है।

1. **समस्या विशेष की प्रकृति से सम्बंधित कारक-** अगर इस प्रकार के कारकों के बारे में सोचा जाए तो कुछ निम्न प्रकार के कारक समस्या समाधान को प्रभावित करने में सशक्त भूमिका निभाते दिखाई दे सकते हैं:
   - ✓ समस्या का सरल या जटिल होना।
   - ✓ समस्या का आकार में छोटा या बड़ा होना।
   - ✓ समस्या का उपयुक्त रूप से पारिभाषित होना या न होना।
   - ✓ पूर्व में हल की गयी समस्याओं से उसकी तुल्यता होना या न होना।
   - ✓ समस्या के हल में वर्तमान उपलब्ध परिस्थितियों में मिलने वाली सहायता का स्वरुप।
   - ✓ समस्या समाधान के लिए आवश्यक उपकरण सामग्री व अन्य ज़रूरतों के पूरा न होने पर समस्या समाधान में पड़ने वाला प्रभाव।
2. **समाधानकर्ता से सम्बंधित कारक-** इस वर्ग में ऐसे कारक आते हैं जिनका सम्बन्ध समाधानकर्ता की प्रकृति, उसके अधिगम एवं प्रशिक्षण स्तर तथा उसके समस्या समाधान व्यवहार से होता है। इस प्रकार के कुछ प्रमुख कारक निम्न हो सकते हैं:
   i. **पूर्व अधिगम एवं प्रशिक्षण का स्तर-** समाधानकर्ता का समस्या विशेष के सन्दर्भ में अर्जित अधिगम अनुभवों या प्रशिक्षण का क्या स्वरुप तथा स्तर है इस बात पर प्रस्तुत समस्या के समाधान का भविष्य निर्भर करता है।
   ii. **समाधानकर्ता की रुचि और अभिप्रेरणा स्तर-** समस्या विशेष को समाधानकर्ता द्वारा कितनी गंभीरता से लिया जा रहा है, यह उसकी किस प्रकार की आवश्यकताओं, रुचियों तथा अभिप्रेरकों की संतुष्टि में सहायक बन रही है तथा वह किस रूप में इसका समाधान ढूंढने के लिए तत्पर या अभिप्रेरित है इन सभी बातों पर समस्या के समाधान का काफी कुछ भविष्य निर्भर करता है।
   iii. **समाधानकर्ता द्वारा समस्या का विश्लेषण-** समाधानकर्ता समस्या विशेष को किस ढंग से अध्ययन करके उसका किस रूप में विश्लेषण करता है इस बात पर समस्या का सही समाधान बहुत कुछ निर्भर करता है। बहुत-से समाधानकर्ता समस्या का बिना अध्ययन किए ही उसके समाधान में जुटने की गलती कर बैठते हैं। इसके विपरीत जो समाधानकर्ता अच्छी तरह समस्या का मनन करके तथा उसे भली-भांति समझने और जानने का प्रयास करके ही आगे बढ़ते हैं उन्हें समस्या समाधान में अधिक सफलता मिलती है।
   iv. **मानसिक विन्यास-** समस्या समाधान में समाधानकर्ता के मानसिक विन्यास का भी काफी गहरा अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मानसिक विन्यास से तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा किसी परिस्थिति, संरचना या समस्या का अपनी विशेष मानसिकता के सन्दर्भ में अवलोकन

करना होता है। हम जिस प्रकार से किसी परिस्थिति विशेष में अपनी समस्याओं को हल करने के आदी होते हैं, उसी तरह की परिस्थितियों का सामना होने या समस्याओं से घिर जाने पर हम अपनी स्मृति या आदतों पर आधारित वैसी ही क्रियाएँ करना चाहते हैं जिनसे हमें पहले समस्या समाधान में सफलता मिली थी। हमारा मानसिक झुकाव तथा प्रवृत्ति किसी समस्या विशेष के समाधान हेतु एक विशेष प्रकार की बन जाती है और बार-बार उसी तरह से समस्या का समाधान करने की ओर प्रवृत्त रहते हैं।

v. **कार्यात्मक स्थिरता-** कार्यात्मक स्थिरता से तात्पर्य किसी वस्तु या विचार विशेष को प्रयोग में लाते रहने सम्बन्धी रूढ़िवादिता से है। हम जिस विचार या वस्तु को जिस ढंग से उपयोग में लाते रहे हैं उसको उसी तरह उपयोग में लाते रहने की हमारी आदत पड़ जाती है और इस आदत से लाचार हम उसके किसी अन्य प्रकार के प्रयोग के बारे में सोचना भी नहीं चाहते। हमारी इस प्रकार की सोच इस बात में तो हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होती है कि समस्या समाधान से जुडी हुई वस्तुओं तथा विचारों का कैसा और क्या उपयोग किया जाए ऐसा सोचने में हमारा समय बर्बाद नहीं होता परन्तु इसका एक बड़ा नुकसान यह होता है कि उस वस्तु या विचार विशेष को हम और किसी ढंग से उपयोग नहीं कर पाते जबकि ऐसा होना संभव होता है। हमारी वस्तु या विचार विशेष को एक ही तरह उपयोग में लाते रहने सम्बन्धी कार्यात्मक स्थिरता (Functional Fixedness) यहाँ आड़े आ जाती है और परिणामस्वरूप हमारे समस्या समाधान सम्बन्धी व्यवहार का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

vi. **समाधानकर्ता की मानसिक एवं शारीरिक दशा-** समाधानकर्ता की समस्या समाधान करते समय जिस प्रकार की मानसिक तथा शारीरिक अवस्था होगी उसका अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव उसके समस्या समाधान व्यवहार पर ज़रूर पड़ेगा। शारीरिक तथा मानसिक रूप से चुस्त, सजग, सक्षम तथा क्रियाशील होने पर उसका समस्या समाधान व्यवहार पर हर प्रकार से अनुकूल प्रभाव ही पड़ेगा जबकि विपरीत अवस्था में समस्या समाधान में अड़चनें खड़ी हो जाएंगी। चिंता अगर सीमा में रहती है तो उससे समस्या समाधान के लिए आवश्यक अभिप्रेरणात्मक वातावरण तैयार हो सकता है परन्तु सीमा से बाहर जाते ही यह चिन्तन को अवरुद्ध करके समस्या समाधान में बाधाएँ खड़ी कर सकती है यही बात संवेगों के लिए भी है। संवेगों का अनुकूल बहाव समस्या समाधान की बहुत-सी बाधाओं को अनायास ही पार करता जाता है, परन्तु इनका अनुचित एवं अनियंत्रित प्रकाशन समस्या समाधान व्यवहार में बहुत सारी रुकावटें खड़ी कर सकता है।

vii. **समस्या समाधान के लिए मिलने वाला समय-** प्रत्येक समस्या अपनी प्रकृति के हिसाब से अलग-अलग कम या ज्यादा समय चाहती है। जितने समय की समस्या समाधान के लिए। वास्तविक रूप में आवश्यकता है अगर उसे उतना नहीं मिल पाता तो अधिक शीघ्रता में समस्या

समाधान का कार्य प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा। समस्या समाधान में दूसरी जो बात विशेष रूप से सहायक या अनुकूल सिद्ध होती है वह समाधान करते समय समाधानकर्ता को मिलने वाले विश्राम से है। इस प्रकार के विश्राम से समस्या समाधान कार्य में बहुत लाभ हो सकता है। मनोवैज्ञानिक भाषा में इसे इन्क्यूबेशन (Incubation) का नाम दिया जाता है।

viii. इस प्रकार समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक या तत्व, समस्या को हल करने के समय की परिस्थितियों तथा समस्या को हल करने वाले व्यक्ति तीनों की ही प्रकृति तथा विशेषताओं से जुड़े रहते हैं। इन सभी तत्वों तथा कारकों में से जो बातें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं उनमें समाधानकर्ता की अपनी मानसिक और शारीरिक दशा, समस्या के प्रति उसकी चेतना तथा अभिप्रेरणा, समस्या के सन्दर्भ में उसका पूर्व ज्ञान, प्रशिक्षण तथा समस्या का समाधान ढूंढने की उसकी संकल्प शक्ति तथा आत्मविश्वास आदि बातें सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान में समाधानकर्ता को सदैव ही उचित सहायता करते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि क्या है? व्याख्या कीजिए।

____

____

समस्या समाधान की प्रक्रिया किन कारकों से प्रभावित हो सकती है?

____

____

3.15 सारांश

अभिप्रेरणा व्यक्ति को किसी कार्य को करने के लिए सक्रिय बनाने के स्रोत का काम करती है। यह आन्तरिक या बाह्य कुछ भी हो सकती है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने इसे समझने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या की है। कुछ ने इसे दण्ड एवं पुरस्कार के रूप में अवधारित किया है तो किसी ने स्वानुभूति के रूप में इसकी व्याख्या की है। उचित अभिप्रेरकों के उपयोग द्वारा बच्चों में रचनाशीलता का विकास किया जा सकता है। रचनाशीलता बच्चों में कुछ नया करने या सोचने की क्षमता उत्पन्न करती है और मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि हर व्यक्ति में यह क्षमता मौजूद होती है। इसे पोषित करने एवं उजागर करने की कला अध्यापकों एवं अभिभावकों में होनी चाहिए। साथ ही बच्चों को समस्या समाधान का कौशल भी सीखना चाहिए ताकि वे भविष्य में जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना विवेक से कर सकें और सफल हो सकें।

3.16 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

- अभिप्रेरणा की परिभाषा एवं 3.5 अभिप्रेरणा के प्रकार
- अभिप्रेरणात्मक चक्र
- अभिप्रेरणा के सिद्धान्त एवं 3.7 अभिप्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ
- रचनाशीलता एवं 3.9 रचनाशीलता की प्रकृति तथा विशेषताएँ
- बच्चों में रचनाशीलता का विकास
- समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि
- समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

3.17 सन्दर्भ पुस्तकें -

1. मंगल, एस. के.- शिक्षा मनोविज्ञान
2. माथुर, जे. एस.- शिक्षा मनोविज्ञान
3. Woolfolk, Anita- Educational Psychology.

इकाई 4
मानव विविधता

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वैयक्तिक भिन्नता
4.3.1 विद्यार्थियों में वैयक्तिक भिन्नता
4.3.2 विविधता का कक्षा में समावेशन
4.4 विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी
4.5 प्रतिभाशाली विद्यार्थी
4.6 सृजनशील विद्यार्थी
4.7 सांवेगिक और व्यवहारजन्य समस्या से ग्रसित विद्यार्थी
4.7.1 सामाजिक दृष्टि से अपवंचित विद्यार्थी: स्ट्रीट चिल्ड्रेन
4.7.2 सामाजिक दृष्टि से अपवंचित विद्यार्थी: बाल श्रमिक
4.9 सारांश
4.10 अभ्यास प्रश्न
4.11 संदर्भ ग्रन्थ

उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- मानव विविधता की संकल्पना को समझ पाएंगें।
- विद्यार्थियों में वैयक्तिक भिन्नता के कारणों को जान सकेंगे।
- कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों की विविधता किस प्रकार संसाधन हो सकती है, इसकी आलोचनात्मक समझ का विकास करेंगे।
- विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की संकल्पना और प्रकारों को जान पाएगे।
- पथ निवासी बच्चे और बाल श्रमिक जैसे हाशिए के वर्गों से आने वाले बच्चों की शैक्षिक चुनौतियों को समझ सकेंगे।

4.1.मानव विविधता

क्रियाकलाप 1:

अपने कक्षा के विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए एक तालिका तैयार कीजिए कि आपकी कक्षा के विद्यार्थी किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न है? कक्षा के विद्यार्थियों की विविधताः

इस क्रियाकलाप में आपने अवलोकन किया होगा कि आपके विद्यार्थियों में पर्याप्त विविधता है। इन विविधताओं के क्या कारण हो सकते हैं? आप पाएंगें कि बहुत सी विविधताएं वंशानुगत और जैविकी कारणों से होती हैं और अनेक विविधताएं सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से हैं। उपर्युक्त सूची में आपने विविधता के जिन आयामों को पहचाना है उन्हें वर्गीकृत करने का भी प्रयास करें। कक्षा में विविधता का होना एक सार्वभौमिक तथ्य है। एक शिक्षक के रूप में हम इन विविधताओं को कैसे देखते हैं और कक्षा में इनका समावेश कैसे करते हैं? यह महत्वपूर्ण है। इस इकाई में वैयक्तिक भिन्नता और इसके शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थों पर चर्चा की जाएगी। वैयक्तिक विविधता के प्रति शिक्षक की अभिवृत्ति, विद्यालय की नीतियां, पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्रीय प्रयास शिक्षा के मूल अधिकार को सुनिश्चित करने का आधार है।

4.2 वैयक्तिक भिन्नता

वैयक्तिक भिन्नता के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा, विलक्षण तथा अद्वितीय होता है। नीचे वैयक्तिक भिन्नता के संदर्भ में कुछ मनोवैज्ञानिकों के विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इन विचारों को पढ़कर उनका विश्लेषण कीजिए-

टायलर के अनुसार- ''मापित की जाने वाली विभिन्नताओं के अस्तित्व को शारीरिक आकर, आकृति, दैहिक कृत्य गामक क्षमताओं, बुद्धि, निष्पत्ति , ज्ञान, रुचियों, अभिवृत्तियों एवं व्यक्तित्व के लक्षणों के रूप में प्रदर्शित किया गया है।''

स्किनर के अनुसार- ''व्यक्तिगत भिन्नताओं में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पक्ष सम्मिलित हो सकता है, जिसका मापन किया जा सके।''

क्रियाकलाप 2:

उपर्युक्त विचारों के अध्ययन से आप किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं?

निष्कर्षतः व्यक्तियों में पायी जाने वाली उन सभी भिन्नताओं तथा भेंदो को, जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करते हुये एक व्यक्ति को अपने आप में एक अनूठा व्यक्ति बनाती हे, वैयक्तिक भिन्नताओं की संज्ञा दी जा सकती है। औसत समूह से मानसिक, शारीरिक और सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक विशेषताओं के संदर्भ में समूह के सदस्य के रूप में भिन्नता या अन्तर को वैयक्तिक भेद कहते हैं।

4.3.1 विद्यार्थियों में वैयक्तिक भिन्नता

अब तक की चर्चा से स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यार्थी अपने आप में भिन्न होता है। उसकी सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक विशेषताएं एक समान स्तर की नहीं होती। विद्यार्थियों भिन्नता के अंतर्गत शरीर रचना, विशिष्ट योग्यताएँ, बुद्धि, रुचि, स्वभाव, उपलब्धि आदि की भिन्नता से विद्यार्थी के समस्त रूप की पहचान की जाती है।विद्यार्थियों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं के कारण हम किन्ही दो विद्यार्थियों को एक-दूसरे का प्रतिरूप नहीं कह सकते हैं। आइए मानव विविधता के कुछ प्रमुख आयामों पर चर्चा करते हैं।

शारीरिक भिन्नता:- शारीरिक दृष्टि से विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की भिन्नता का अवलोकन किया जा सकता है। जैसे कि, रंग, रूप, भार, कद, बनावट, यौन-भेद, शारीरिक परिपक्वता आदि।

मानसिक भिन्नता:- मानसिक दृष्टि से विद्यार्थियों में भिन्नता का दर्शन होता है। कोई विद्यार्थी प्रतिभाशाली, तो कोई अत्याधिक बुद्धिमान, कोई कम बुद्धिमान तो कोई मूर्ख होता है। इतना नहीं, एक ही विद्यार्थी में शैशवावस्था, किशोरावस्था और अन्य अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न मानसिक योग्यता पाई जाती है। इस योग्यता की जाँच करने के लिए बुद्धि परीक्षाणों, उपलब्धि परीक्षाणों आदि प्रकार के उपकरणों का निर्माण किया गया है।

संवेगात्मक भिन्नता:- संवेगात्मक दृष्टि से विद्यार्थियों के भिन्नताओं को सहज ही जाना जा सकता है। इन भिन्नताओं के कारण ही कुछ विद्यार्थी उदार हृदय, कुछ कठोर हृदय, कुछ खिन्न, चित्त और कुछ प्रसन्न चित्त के होते है। उनकी संवेगात्मक विभिन्नताओं का मापन करने के लिए संवेगात्मक परीक्षाणों का निर्माण किया गया है।

रुचियों में विभिन्नता:- रुचियों की दृष्टि से विद्यार्थियों में कभी-कभी आश्चर्यजनक विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। किसी को संगीत में किसी को चित्रकला में, किसी को खेल में और किसी को वार्तालाप में रुचि होती है। प्रत्येक विद्यार्थी कि रुचि में उसकी आयु को दृष्टि के साथ-साथ परिवर्तन होता जाता है। यही कारण है कि बालकों और वयस्कों की रुचियों में भिन्नता होती है।

विचारों में भिन्नता:- विचारों कि दृष्टि से विद्यार्थियों की भिन्नताओं को सामान्यतः स्वीकार किया जाता है। विद्यार्थियों में इन विचारों के विविध रूप मिलते हैं, जैसे कि, उदार, अनुदार, धार्मिक, अधार्मिक, नैतिक, अनैतिक, आदि। समान विचार या विचारों के विद्यार्थी बड़ी कठिनाई से मिल पाते है। विचारों की भिन्नताओं के अनेक कारणों में से मुख्य है - आयु, लिंग, और विशिष्ट परिस्थितियां जिनमें घर, समाज, का वातावरण आदि।

सीखने की प्रक्रिया में भिन्नता:- सीखने की दृष्टि से व्यक्तियों और विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ दृष्टिगत होती है। कुछ विद्यार्थी किसी कार्य को जल्दी और कुछ देर से सीखते है। इस सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो कहते है। ''एक ही आयु के बालकों में सीखने की तत्परता का समान स्तर होना आवश्यक नहीं है। उनकी सीखने की भिन्नता के कारण है - उनकी परिपक्वता की गति में भिन्नता और उसके द्वारा किसी बात का पहले से सीखे हुए होना।''

गत्यात्मक योग्यताओं में भिन्नता:- गत्यात्मक योग्यताओं की दृष्टि से विद्यार्थियों में अत्याधिक भिन्नताओं का होना पाया जाता है। इन भिन्नताओं के कारण ही कुछ विद्यार्थी एक कार्य को अधिक कुशलता से और कुछ कम कुशलता से करते है। इस प्रकार की कुशलता की योग्यता में आयु के साथ-साथ वृद्धि होती जाती है।

चरित्र में भिन्नता:- चरित्र कि दृष्टि से सभी विद्यार्थियों में कुछ-न-कुछ विभिन्नता का होना अनिवार्य है। विद्यार्थी अनेक बातों से प्रभावित होकर एक विशेष प्रकार का चरित्र निर्माण करते है। शिक्षा, संगीत, परिवार, आस पड़ोस आदि सभी घटकों का चरित्र पर प्रभाव पड़ता है और सभी चरित्र के विभिन्न स्वरूप को निश्चित करते है।

विशिष्ट योग्यताओं में भिन्नता:- विशिष्ट योग्यताओं कि दृष्टि से विद्यार्थियों में अनेक भिन्नताओं का अनुभव किया जाता है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय, बात यह है कि सरल व्यक्तियों में विशिष्ट योग्याताएँ नहीं होती है। और जिनमें होती भी है, उनमें इनकी मात्रा में अन्तर अवश्य मिलता है। न तो सब विद्यार्थी खेल में एक स्तर के होते है और न सब नाटयकला में।

इसके अतिरिक्त कक्षा में विद्यार्थियों के सामजिक सांस्कृतिक आर्थिक पृष्ठभूमि में अंतर के कारण भी अनेक विविधताएँ होती हैं। अपने साथी शिक्षकों के साथ चर्चा करके नीचे दी गयी तालिका को भरिये।

विद्यार्थियों की सामजिक सांस्कृतिक आर्थिक पृष्ठभूमि से जुड़ी विशेषता	विविधता का प्रकार
भाषा	हिंदी, मराठी, पंजाबी----
धर्म	
क्षेत्र	
आर्थिक पृष्ठभूमि	
जेंडर	

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए-

1.वैयक्तिक भिन्नता से आप क्या समझते हैं?

----

2. वैयक्तिक भिन्नता के विभिन्न आयामों की चर्चा कीजिए?

4.4 विविधता का सम्मान और समावेशन

क्रियाकलाप 3

उन विविधताओं की सूची बनाइए जिनके कारण आप अपने सहकर्मियों से भिन्न हैं?

कल्पना कीजिए कि उपर्युक्त में से किसी एक आधार पर आपके साथ विभेद किया जाए तो आपको कैसा लगेगा?

प्रत्येक व्यक्ति की विशेषता विविधता के रूप में उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग होती है। प्रत्येक व्यक्ति यह भी चाहता है कि उसकी इन विशिष्टताओं का अन्य के द्वारा स्वागत एवं सम्मान हो। जिस प्रकार आप अपनी विविधता के आधार पर किसी भी प्रकार के बहिष्करण को नहीं स्वीकार कर सकते हैं उसी प्रकार आपके विद्यार्थी भी चाहेगें कि उनकी विविधताओ का सम्मान और पोषण हो। आप स्वयं से सवाल पूछें कि

- क्या आपकी कक्षा में सभी विद्यार्थी सहज महसूस करते हैं?
- क्या आप अपने कक्षा के विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि से भलीभाँति परिचित है?
- आप अपने कक्षा में विद्यार्थियों के लिए सीखने के जिन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं क्या वह सभी की सहभागिता को प्रेरित करता है?
- आपकी कक्षा में कौन से विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्हें अधिगम सम्बन्धी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?
- आपकी कक्षा में कौन से विद्यार्थी ऐसे हैं जो अपने रचनात्मकता के कारण विशिष्ट हैं?
- कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी की विविधता का सम्मान और समावेशन हो, इसके लिए एक शिक्षक के रूप में हमें निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए-

अपने विद्यार्थियों को जानिए: आपकी कक्षा में आने वाला प्रत्येक विद्यार्थी एक चेतन प्राणी है जो अपने साथ अपने अनुभव लेकर आता है। एक समावेशी शिक्षक अपने विद्यार्थी के इन अनुभवों

को जानने का प्रयास करता है। वह अपने विद्यार्थियों की प्रत्येक विशेषता-उनकी पृष्ठभूमि, अभिरूचि, संज्ञानात्मक क्षमता आदि को लगातार खोजने का प्रयास करता है। इनके आधार पर ही वह अपने विद्यार्थी से जुड़ता है। उनके व्यक्तिगत एवं पारिवारिक इतिहास को जानने का प्रयास करें।

स्वयं को पूर्वाग्रहों से मुक्त रखिए: शिक्षक भी स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक अनुभवों से युक्त होने के कारण आग्रहों और पूर्वाग्रहों से युक्त रहता है। कक्षा में विद्यार्थियों से अन्तःक्रिया के दौरान आपकों खुद को इन पक्षों से मुक्त रखना होगा।

समावेशी शिक्षणशास्त्रीय युक्तियों का प्रयोग करें- कक्षा में पढ़ाने के दौरान विद्यार्थियों अपने अनुभव साझा करने को कहे। उन्हें समूह में कार्य करने को कहे। स्वयं प्रस्तुतीकरण करने के दौरान ध्यान रखें कि एक से अधिक क्षेत्रों,धर्मों , समुदायों के उदाहरण प्रस्तुत करें। गृहकार्य में विविधता बनाए रखें। यदि कक्षा में कोई विशिष्ट आवश्यकता वाला विद्यार्थी है तो उसके अनुरूप कक्षा चर्चा हो।

विद्यार्थियों की पहचान को स्वीकार करें: प्रत्येक विद्यार्थी की विविधता उसके पहचान का भी हिस्सा होती है। उसके इस पहचान का स्वागत करें और इसकी प्रशंसा करें। उनके साथ तद्रूभूति पूर्ण व्यवहार करें।

मननशील शिक्षक बनें : एक शिक्षक के रूप में आप विद्यार्थियों के साथ अपने अनुभवों को लिखें। इस लेखन में इस तथ्य को उभारें कि आपने किस प्रकार विविधता का समावेशन किया? विद्यार्थियों की क्या प्रतिक्रिया रही? अपने इन अनुभवों को अन्य शिक्षकों के साथ भी साझा करें।

अपने प्रगति की जाँच कीजिए-

अपनी कक्षा को समावेशी बनाने के लिए आप कौन से तरीके अपनाएंगें?

4.5 विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी

विशिष्ट आवश्यकताओं वाले विद्यार्थी वे होते है जिनकी आवश्यकताएं सामान्य अधिगमकर्ता से भिन्न होती है। यह भिन्नता कम अथवा बहुत अधिक भी हो सकती है। भिन्नता के अनेक आयाम भी हो सकते हैं - शारीरिक भिन्नता तथा मानसिक भिन्नता आदि। जब भिन्नता की मात्रा तथा स्वरूप सामान्य से विचलित होता है तो ऐसे अधिगमकर्ताओं की शिक्षा प्रक्रिया सामान्य अधिगमकर्ताओं जैसी कर पानाप जटिल होता है। ऐसे विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रकार के शिक्षण वातावरण और युक्तियों की आवश्यकता होती है। इनके लिए विशेष सुविधाओं वाले विशेष/विशिष्ट विद्यालय स्थापित किए जाते है। वर्तमान में इस बात पर बल दिया जाता है की विशिष्ट आवश्यकता वाले

विद्यार्थियों की शिक्षा सामान्य शैक्षिक संस्थाओं में प्रदान की जाए ताकि उन्हें वास्तविक वातावरण में रहने का अवसर मिल सके।

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की परिभाषा तथा अवधारणा

वह विद्यार्थी जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और संवेगात्मक आदि विशेषताओं में औसत से विशिष्ट हो और यह विशिष्टता इस स्तर की हो कि उसे अपनी विकास क्षमता की उच्चतम सीमा तक पहुँचने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता हो असाधरण या विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी कहलाते हैं।''

क्रो एवं क्रो के अनुसार-'' विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी शब्दावली का प्रयोग उन विद्यार्थियों के लिए करते है जो सामान्य विद्यार्थियों से शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक या सामाजिक विशेषताओं में इतने अधिक भिन्न होते है कि उन्हें अपनी क्षमता के अधिकत्तम विकास हेतु विशेष सामाजिक और शैक्षिक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है।''

टेलफोर्ड और सारे के अनुसार-''विशिष्ट अथवा असाधरण विद्यार्थी वे है जो शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक दृष्टि से बाधित हैं। साथ ही वे विद्यार्थी भी इस श्रेणी में शामिल है जो मानसिक मापन में किसी भी क्षेत्र में प्रतिभाशाली होते है।''

हेक के अनुसार-''असाधारण विद्यार्थी वे है जो कि सामान्य बच्चों से शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक या सामाजिक विशेषताओं में इतना अधिक अलग होते हैं कि अपनी उच्चतम योग्यता तक विकसित होने के लिए उन्हें विशेष शैक्षिक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है।''

क्रियाकलाप 4:

इन परिभाषाओं के अध्ययन के उपरांत आपके अनुसार विशिष्ट विद्यार्थियों की क्या विशेषता होती है? उल्लेख करें।

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थीसे अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों से संबंधित किसी एक या अन्य व्यक्तित्व गुणों और विशेषताओं के संदर्भ में सामान्य या औसत बालकों से इस सीमा तक अलग और भिन्न होते है कि उनके शिक्षण और समायोजन के लिए विशेष प्रकार की देखभाल एवं शिक्षा-दीक्षा की जरुरत पड़ती है। विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के संबध में दी गई उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर उनकी प्रकृति और विशेषताओं के बारे में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं-

- विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी सामान्य या औसत विद्यार्थियों से अधिक अलग और भिन्न होते है।

- सामान्य या औसत विद्यार्थियों से विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी की यह भिन्नता या विशेष दूरी विकास की दोनों दिशाओं धनात्मक और ऋणात्मक में से किसी भी एक में हो सकती है।
- सामान्य या औसत वाले विद्यार्थी से विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी की यह भिन्नता या विशेष दूरी इस सीमा तक बढ़ी हुई होती है कि इसके कारण उन्हें अपने और अपने वातावरण से समायोजित होने में विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ता है और अपनी विशेष योग्यताओं और क्षमताओं के विकास, उचित समायोजन तथा आवश्यक बृद्धि एवं विकास हेतु विशष देख-रेख एवं शिक्षा-दिक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के प्रकार

a. पिछड़ेपन से ग्रस्त विद्यार्थी
b. बाल अपराधी या सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा विद्यार्थी
c. दृष्टि दोषो से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी
d. श्रवण दोषों से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी
e. मांसपेशी एवं अस्थिदोषों से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी
f. मानसिक रूप से विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी
g. अधिगम की दृष्टि से अक्षम या विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी
h. संवेगात्मक रूप से अशांत विद्यार्थी
i. प्रतिभाशाली/प्रतिभावान विद्यार्थी
j. रचनाशील/सृजनशील विद्यार्थी

विशिष्ट आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों की जानकारी का सार-संक्षेप में निम्नलिखित है-

पिछड़े हुए विद्यार्थी: पिछड़े हुए विद्यार्थी से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जिनकी उपलब्धि की मात्रा उनके स्वाभाविक योग्यता स्तर की तुलना में किसी कारणवश काफी कम होती है। नवीन बातों को ग्रहण करने में सामान्य से कम योग्यता का प्रदर्शन करने की वजह से इन्हें बहुधा धीमी गति से सीखने वाले विद्यार्थी की संज्ञा भी दी जाती है। पिछड़े विद्यार्थियों में कम बुद्धिवाले का पाया जाना जरुरी नहीं होता। दूसरे शब्दों में बुद्धिमान होने का अर्थ यह नहीं है कि अब वह बालक पिछड़ेपन का शिकार नहीं हो सकता। जितना उच्च उसका बुद्धि या योग्यता स्तर है अगर वह उसके अनुरूप प्रदर्शन नहीं करता तो उसे भी पिछड़ा हुआ ही माना जाएगा। पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी कारक या तो बालक विशेष में ही निहित होते है जैसे उसकी शारीरिक तथा मानसिक न्यूनताएं, संवेगात्मक अस्थिरता तथा स्वभावगत विशेषताएँ रुचियाँ इत्यादि। इसके अलावा पिछड़ेपन का कारण विद्यार्थी

के वातावरण में भी निहित होते हैं जैसे घर परिवार, पास-पड़ोस, विद्यालय तथा उच्च सामाजिक संस्थाओं से सम्बन्धि प्रतिकूल परिस्थितियां। पिछड़े बालकों के पिछडेपन को दूर करने हेतु उपचारात्मक कदम उठाने में पहल उनके पिछड़ेपन की प्रकृति और उससे सम्बन्धित कारणों के उचित निदान से की जानी चाहिए और फिर उसको ध्यान में रखते हुए ही उचित कदम उठाये जाने चाहिएं।

बाल अपराधी या किशोर अपराधी: बाल अपराधी या किशोर अपराधी अल्पवयस्क बालक होते है जो अपनी संस्कृति और समाज के नियमों तथा आचार संहिता की अवहेलना कर ऐसे समाज विरोधी कार्य करते हुए पाए जाते हैं कि अगर जिन्हें कोई वयस्क व्यक्ति करे तो उसे कानूनी रूप से अपराधी की संज्ञा दी जाती है। बाल अपराधी बनने के पीछे जो कारण तथा कारक कार्य करते हैं वे वस्तुतः वातावरण जन्य ही होते है। बाल अपराध बहुत सीमा तक अस्वस्थ वातावरण और प्रतिकूल परिस्थितियों की उपज हैं। अतः इसकी रोकथाम हेतू ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसी वातावरणजन्य परिस्थितियों को नियंत्रित करने की कोशिश की जाए जिनकी प्रतिक्रिया स्वरूप बालक कुसमायोजन के शिकार होकर विद्रोह पर उतारु हो जाते हैं अथवा समाज विरोधी शक्तियों में फंसकर अपराध की दुनिया को अपना लेते है। इनके अपराध करने पर इन्हें कठोर सजा या जेल में ठूँसने की व्यवस्था की बजाय उनके आचारण में सुधार लाने की प्रक्रिया पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए। उचित व्यवहार, स्वस्थ वातावरण, और उपयुक्त शिक्षा से इन भटके हुए बालक या किशोर अपराधियों को सही मार्ग पर लाना ही बाल अपराध का उचित इलाज सिद्ध हो सकता है।

दृष्टिदोषों से युक्त दिव्यांग विद्यार्थियों से अभिप्राय उन बालकों से हैं जिनमें इस प्रकार के दृष्टिदोष पाये जाते हैं जिनकी वजह से इनकों किसी वस्तु का ठीक प्रकार प्रत्यक्षीकरण करने में काफी परेशानी का अनुभव करना पड़ता हैं। इस प्रकार की दिव्यांगता के पिछे वंशानुक्रम तथा वातावरण जन्य दोनों प्रकार के कारण हो सकते हैं। इन बालकों के उचित समायोजन तथा शिक्षा हेतु हमें सर्वप्रथम इनके दृष्टदोषों की प्रकृति से अवगत होकर इन्हें इनकी दो मुख्य श्रेणियों-पूर्ण या काफी अंधे बालक तथा आंशिक रूप से अंधे और न्यून दृष्टि वाले बालकों में विभक्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। पहली श्रेणी के बालकों को जहां अंध-विद्यालयों द्वारा शिक्षा देना ठीक रहता है वहीं दूसरी तरह के विद्यार्थियों को सामान्य विद्यालयों में सामान्य विद्यार्थियों के साथ कुछ अतिरिक्त व्यवस्था द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जा सकता है।

श्रवण दोषों से युक्त दिव्यांग विद्यार्थियों से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जिनमें ऐसे श्रवण दोष पाये जाते है जिनके कारण उन्हें या तो कुछ भी सुनाई नहीं देता अथवा कम या अस्पष्ट सुनाई देता है। इस दृष्टि से इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता हैः बहरे बालक तथा ऊंचा सुनने वाले बालक। इन विद्यार्थियों को इस प्रकार के दोषों के लिए वंशानुगत तथा वातावरण जन्य दोनों ही प्रकार के कारण उत्तरदायी हो सकते है। इन विद्यार्थियों की शिक्षा तथा समायोजन की दिशा में

सहायता पहुँचाने हेतु जहां बहरे बालकों को मूल एवं बधिर विद्यालयों में भेजना ठीक रहता है। वहीं ऊंचा सुनने वाले विद्यार्थियों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य विद्यालयों में कुछ विशेष उचित प्रबन्ध करते हुए शिक्षा देना उपयुक्त रहता है।

मांसपेशी एवं अस्थियों से युक्त दिव्यांग विद्यार्थी से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से होता है जिनकी मांसपेशियों एवं अस्थियों में ऐसे विकार तथा दोष जाए जाते है जिनके कारण उन्हें विभिन्न प्रकार के अंग संचालन तथा क्रियात्मक कार्यो को संपादित करने में काफी कठिनाई होती है और परिणाम स्वरूप शिक्षा तथा समायोजन हेतु अनेक समस्याओं का शिकार होना पड़ता है। इन विद्यार्थियों के ऐसे दोषों के लिए केवल आनुवांशिकता को कारण नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि इनका संक्रमण जीन्स एवं क्रोमोसोम के माध्यम से नहीं हो सकता। गर्भाधान के बाद मां के गर्भ में मिलने वाला वातावरण तथा जन्म के समय और पश्चात क्रियाशील प्रतिकूल वातावरणजन्य परिस्थितियां इस प्रकार की विकलांगता के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। इन बालकों की शिक्षा और समायोजन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति सामान्य विद्यालयों में सामान्य विद्यार्थियों के साथ भली-भांति हो सकती है।

मानसिक रूप से दिव्यांग विद्यार्थी से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जिनमें औसत से कम बुद्धिलब्धि की उपस्थिति के अतिरिक्त समायोजित व्यवहार सम्बन्धी अक्षमताएं भी इस स्तर तक होती है कि उन्हें उनके समायोजन, विकास तथा कल्याण हेतु विशेष देखभाल तथा शिक्षा की जरुरत पड़ती है। मानसिक दिव्यांगता या मंदबुद्धि को उसकी प्रकृति के हिसाब से चार मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है। शैक्षिक और समायोजन दृष्टि से जहां अल्प तथा मध्यम वर्ग के मानसिक मंदन से युक्त बालकों को क्रमशः शिक्षा ग्रहण करने योग्य तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने योग्य समझा जाता है, वहीं तीव्र तथा गहन मानसिक मंदन के शिकार बालकों को न तो शिक्षा दी जा सकती है और न ही प्रशिक्षण। इनके लिए विशेष रूप से देखभाल की जरुरत होती है जिससे इन्हें वातावरण के साथ समायोजित रहने और जीने हेतु मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहने में उचित सहायता दी जाती रहे।

अधिगम की दृष्टि से अक्षम या दिव्यांग विद्यार्थी से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो अधिगम की दृष्टि से इतने अधिक अक्षम या दिव्यांग होते हैं कि उन्हें अधिगम के क्षेत्र में होने वाली अपनी कमियों तथा अक्षमताओं से निपटने के लिए विशेष प्रकार के ध्यान एवं शिक्षा की जरुरत पड़ती है। इस प्रकार की अक्षमता या दिव्यांगता के पीछे जो कारण कार्य करते है उन्हें मोटे तौर पर तीन मुख्य अंगों वंशानुगत कारण जैविक या शारीरिक कारण तथा वातावरण सम्बन्धी कारणों में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार की अक्षमता का निदान करने हेतु परीक्षणयुक्त प्रविधियों (जैसे प्रामाणिक निदानात्मक परीक्षण, योग्यता परीक्षण या प्रक्रिया परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण तथा दैनिक मूल्यांकन प्रणाली) तथा परीक्षण रहित प्रविधियों (जैसे निरीक्षण, रेटिंग स्केल, चैकलिस्ट, साक्षात्कार आदि)

का प्रयोग किया जा सकता है। इन विद्यार्थियों की शिक्षा हेतु अलग विद्यालयों या कक्षाओं की बात उचित नहीं है। वर्तमान में उपलब्ध शैक्षिक ढ़ांचे में इनकी शिक्षा के प्रबन्ध किए जाने चाहिए। विद्यार्थी विशेष में जिस प्रकार की अधिगम अक्षमता है उसका उचित निदान होने के पश्चात ऐस सभी उपचारात्मक कदम उठाए जाने चाहिए जिनसे विद्यार्थी की अधिगम अक्षमताओं को दूर करने हेतु वांछित प्रयत्न किए जा सके।

संवेगात्मक रूप से अशांत विद्यार्थियों के अभिप्राय ऐसे विद्यार्थियों से है जो किसी अपनी एक या अन्य मनोविकारात्मक या व्यवहारजन्य परेशानियों (जिनके पीछे कोई आंगिक या शारीरिक कारण नहीं होते) के कारण इतने अधिक कुसमायोजित होते है कि उन्हें अपनी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध मिलता है। इनकी परेशानियों एवं विकृति को ध्यान में रखकर सामान्यतः इन्हें जिन वर्गों में बांटा जाता है वे है अवसाद से पीड़ित बालक, चिंता मनोविकारों से ग्रस्त बालक, मनोदैहिक या मनो-विकृतियों के शिकार बालकः तथा व्यवहारजन्य विकारों से ग्रस्त बालक. इन बालकों को ऐसा बन जाने के लिए उत्तरदायी कारणों का प्रमुख रूप से वंशानुक्रम, जैविक तथा शारीरिक एव सामाजिक वातावरणजन्य कारकों के रूप में विभक्त किया जा सकता है। इनकों अपने समस्या ग्रस्त व्यवहार से निपटने में सहायता करने हेतु हम उपचारात्मक तकनीक के रूप में जिन चार चिकित्सा पद्धति को अपना सकते है, वे हैं - मनोगत्यात्मक व्यवहार, सामूहिक तथा परिवार चिकित्सा पद्धति। इनकी शिक्षा सामान्य विद्यालयों में सामान्य बालकों के साथ ही होना ठीक रहता है अलग विद्यालयों तथा कक्षाओं में नहीं। परंतु इसके उचित परिणाम तभी निकल सकते है जबकि इनकी व्यवहारजन्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए इनके ऊपर व्यक्तिगत ध्यान देने और मनोवैज्ञानिकों का परामर्श प्राप्त करते हुए उपयुक्त शिक्षा देने पर ठीक तरह सोचा जाता रहे।

4.5 प्रतिभाशाली विद्यार्थी-

प्रतिभाशाली विद्यार्थी वह है जो निरन्तर जीवन के किसी भी क्षेत्र में अपनी अद्भुत कार्यकुशलता का परिचय देता है। विद्यालय में सामान्यत: प्रतिभाशाली विद्यार्थी उसी को कहा जाता है जो बौद्धिक कार्यों में बहुत अच्छे अंक प्राप्त करता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह आवश्यक नहीं है कि बुद्धिलब्धि ही प्रतिभा का आधार है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशेष योग्यता स्थापित करने वाला विद्यार्थी भी प्रतिभाशाली कहलाता है। प्रतिभाशाली विद्यार्थी की अवधारणा स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाएं दी जा रही है।

स्किनर एवं हैरीमैन के अनुसार

‘‘प्रतिभाशाली विद्यार्थी दो प्रकार के होते है। प्रथम वे विद्यार्थी जिनकी बुद्धि-लद्धि 130 से अधिक होती है और जो असाधरण बुद्धि वाले होते है। दूसरे वे विद्यार्थी जो कला गणित, संगीत, अभिनय आदि में एक या अधिक में विशेष योग्यता रखते है।’’

हरमन व ओडन के अनुसार

''सामान्य रूप में या किसी विशेष क्षेत्र में उच्च बौद्धिक योग्यता रखने वाले विद्यार्थी प्रतिभाशाली होते है।''

जेम्स ट्रेवर के अनुसार

''कुशाग्र बुद्धि अथवा प्रतिभाशाली विद्यार्थी वह है जो निरन्तर किसी भी उचित कार्यक्षेत्र में अपनी अदभूत कार्यकुशलता अथवा प्रवीणता का परिचय देता है।''

क्रियाकलाप 5:

इन परिभाषाओं के अध्ययन के उपरांत आपके अनुसार प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की क्या विशेषता होती है? उल्लेख करें।

प्रतिभाशाली विद्यार्थी के लक्षण अथवा विशेषताएँ:-

1. प्रतिभाशाली विद्यार्थी की बुद्धिलब्धि साधारणतया 130 से ऊपर होती है।
2. नैतिक अभिवृत्तियों में श्रेष्ठता होती है।
3. शैशवावस्था में अपेक्षाकृत शीघ्रता से खड़ा होना, चलना तथा बोलना सीख लेते है।
4. इनकी निरीक्षण शक्ति तीव्र होती है।
5. स्मरण शक्ति कुशाग्र होती है।
6. तत्काल उत्तर देने की क्षमता होती है।
7. विचारों में मौलिकता होती है।
8. ज्ञान को स्पष्ट करने की योग्यता होती है।
9. विचारों को तार्किक विधि से प्रस्तुत करने की शक्ति होती है।
10. शब्दावली विशाल होती है।
11. वर्तनी तथा वाचन में पर्याप्त श्रेष्ठता होती है।
12. विद्यालय में अध्ययन हेतु नियमित रूप से उपस्थित होते है।
13. इन विद्यार्थियों का सामान्य परिपक्वता स्तर ऊंचा होता है।
14. प्रतिभाशाली विद्यार्थी तथ्यों के बीच शीघ्र सम्बन्ध स्थापित कर लेते है।
15. विद्यालय विषयों की परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर लेते है।

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की शिक्षा:-

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था निम्नांकित रूप से की जानी चाहिए।

1.कक्षा की पृथकता -

प्रतिभाशाली विद्यार्थी के लिए अलग से कक्षाओं का आयोजन करना चाहिए, ताकि उन्हें उनके स्तर की शिक्षा उपलब्ध हो सके।

2.शीघ्र उन्नति -

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में शीघ्र उन्नति कर देनी चाहिए।

3.व्यक्तिगत ध्यान -

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को और व्यक्तिगत तौर पर ध्यान देना चाहिए, ताकि वे मनोवैज्ञानिक सुरक्षा अनुभव कर सकें।

4.पाठ्यक्रम की विविधता -

उनके लिए पाठ्यक्रम की विविधता होनी चाहिए ताकि वे अपनी रुचियों, आवश्यकताओं, योग्यताओं तथा व्यवहारों के अनुरूप विषयों का चुनाव कर सकें।

5. गृहकार्य की पर्याप्तता -

इस प्रकार के विद्यार्थियों को घर के लिए पर्याप्त कार्य दिया जाए ताकि उनके अतिरिक्त समय को शिक्षा के रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सके।

6. पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्यों की समृद्धि

उनके लिए पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्य अत्यन्त समृद्ध होने चाहिए। इन कार्यों के अन्तर्गत विचार-विमर्श, सम्मेलन, भाषण, प्रतियोगिताएँ, खेल-कूद प्रतियोगिताएं आदि के लिए जा सकते है।

7. पुस्तकालय सम्बन्धी सुबिधाएं -

उन्हें पुस्तकालय द्वारा उत्तम साहित्य पढ़ने की सुबिधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

8. उत्तरदायित्व सौपना -

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को उत्तरदायित्व के कार्य जैसे मानीटर का काम, सभाओं और खेल-कूद का आयोजन करने, संगीत-गोष्ठियों का प्रबन्ध करने आदि का काम सौंपना चाहिए ताकि वे उत्तरदायित्व वहन करना सींख सके।

9. छात्रवृत्तियों की व्यवस्था -

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्तियां प्रदान की जानी चाहिए।

11. शिक्षण प्रद्धति

प्रतिभाशाली विद्यार्थी के शिक्षण के लिए योजना-विधि का उपयोग श्रेयस्कर होगा।

12. नेतृत्व प्रशिक्षण -

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को नेतृत्व की योग्यता प्रदान करने हेतु खेलकूद, स्काउटिंग, वाद-विवाद, आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेने हेतु पूर्ण अवसर प्रदान करने चाहिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए –
मान लीजिये की आप की कक्षा में कुछ प्रतिभाशाली विद्यार्थी हैं। इनके लिए आप गृहकार्य और कक्षा कार्य का नियोजन किस प्रकार करेंगे?

1.6 सृजनशील विद्यार्थी-

क्रियाकलाप:
उन व्यक्तियों और विद्यार्थियों की कल्पना कीजिए जिन्हें आप सृजनशील मानते हैं। इनकी उन विशेषताओं की सूची बनाइए जो इनके सृजनात्मक चिन्तन के लक्षण हैं।

सृजनात्मकता का अर्थ है किसी वास्तविक कार्य की रचना अर्थात् सृजन करना जो कि समाज के लिए उचित एवं उपयोगी हो। जिसका प्रतिपादन इससे पहले किसी ने न किया हो। सृजनात्मकता सार्वभौमिक नहीं होती अपितु यह कुछ विशेष क्षेत्रों तक ही सीमित होती है। जैसे कि आइस्टीन विज्ञान के क्षेत्र में सृजनात्मक थे तथा पिकासो पेंटिंग के क्षेत्र में ही सोच पाते थे। अधिकतर हम सृजनात्मकता को कला के क्षेत्र तक सीमित रखते हैं परंतु सृजनात्मकता किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि जिसे किसी क्षेत्र का अधिकाधिक ज्ञान है, वही सृजनात्मक है। परंतु यह सत्य नहीं है। सृजनात्मकता के लिए ज्ञान के साथ-साथ कुछ और भी चाहिए और वह है- किसी समस्या को अलग या नए तरीके से देखने की क्षमता। यह क्षमता केवल ज्ञान से नहीं अर्जित की जाती। अतः सृजनात्मकता के लिए केवल ज्ञान के साथ-साथ लोचशीलता विचारों का लगातार पुनर्गठन भी आवश्यकता है। इस प्रक्रिया के दौरान हमारी प्रेरणा, जुझारूपन तथा सामाजिक समर्थ की थी अहम् भूमिका है।

सृजनात्मक चिन्तन का तात्पर्य समस्याओं का सृजनात्मक ढंग से समाधान करने से है। समस्या-समाधान के सामान्य तरीके से भिन्न, सृजनात्मक समाधान, वह समाधान होता है जिसे पहले किसी ने सोचा था, जो बिल्कुल नया हो। एक कलाकार, संगीतज्ञ, लेखक, वैज्ञानिक, खिलाड़ी कई भी सृजात्मक चिंतक हो सकता है। एक सृजनात्मक वैज्ञानिक अपनी खोज तथा सिद्धांतो के अध्ययन के लिए नए रास्तों का उपयोग करता है तथा नए समाधान तक पहुँचता है। सृजनात्मक चिन्तन में ''नया'' शब्द पर विशेष बल दिया जाता है। सृजनात्मक समाधान या उत्पाद, जो स्वतः स्फूर्त या वह परिश्रम तथा तैयारी जो हमारे अचेतन मन में जा चुकी है, उनकी परिणति होते हैं। इन चर्चा के आधार पर कह सकते हैं की रचनात्मकता का विशेषगुण जिन विद्यार्थियों में पाये जाते है उसे हम रचनाशील विद्यार्थी कह सकते है। रचनात्मक विद्यार्थी से तात्पर्य उन विद्यार्थी से होता है जो मौलिक चिन्तन के धनी होते है और जिनमें मौलिक रचना करने और उत्पादन करने की क्षमता होती है। इनमें एक

विशेषता यह भी होती है कि ये किसी समस्या का समाधान परम्परागत विधियों से न करके नई विधियों से करते है। यह देखा गया है कि अधिकतर प्रतिभाशाली विद्यार्थियों में रचनाशीलता होती है लेकिन इसके अपवाद भी होते है। दूसरी तरफ कुछ गैर प्रतिभाशाली विद्यार्थियों में रचनाशीलता होती है। अतः रचनाशील विद्यार्थी को शिक्षा पर अलग से विचार करना आवश्यक है।

सृजनशील विद्यार्थी के लक्षण अथवा विशेषताएं:-

a) सृजनशीलता विद्यार्थी के व्यवहार में मौलिकता होती है।
b) उसके अन्दर स्वयं निर्णय लेने की क्षमता होती है।
c) सृजनशील विद्यार्थी में संवेदना अधिक होती है।
d) वे किसी भी कार्य को गम्भीरता से लेते है।
e) वे अपने कार्य को अपना समझकर उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से करते है।
f) उनके विचार तथा अभिव्यक्ति में प्रवाहात्मकता होती है।
g) उनमें उत्सुकता के कारण कुछ-न-कुछ करने की लगन बनी रहती है।
h) उनका व्यवहार लचीला होता है। वे आवश्यकतानुसार व्यवहार को परिवर्तित कर लेते है।
i) हर काम को विस्तार में कहने व करने की उनकी आदत होती है।
j) उनमें प्रगतिशीलता होती है।
k) उनमें रहस्यपूर्ण, अशांत तथा अनजान के प्रति आकर्षण व निर्भयता होती है।
l) उन विद्यार्थियों में वस्तुओं में निहित सम्बन्धों को देखने और सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता होती है।
m) उनके अन्दर कल्पना शक्ति की प्रचुरता होती है।
n) उनमें उच्चतर की सौन्दर्यानुभूति, सौन्दर्य ग्राह्यता व सौन्दर्यपरक क्षमता होती है। वे किसी भी सुन्दर वस्तु की तरफ शीघ्र आकर्षित होते हैं व उसकी सराहना करते है।
o) उनमें विपरीत परिथितियों में सामंजस्य करने में तथा साहस भरे कार्यो के लिए चुनौती स्वीकार करने की क्षमता होती है।
p) रचनाशीलता विद्यार्थी में किसी भी कार्य को करने के लिए आत्मविश्वास की प्रचुरता होती है।
q) उनमें एक ही समय में कई विचारों का सम्मुख रखने की योग्यता होती है।
r) उनमें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की योग्यता होती है।
s) उनमें विरोधी तत्वों का समन्वय करने की क्षमता होती है।
t) उनमें आनेवाली समस्याओं की पूर्व कल्पना होती है।
u) वे कठिनाईयों से जूझना जानते है।

सृजनशील विद्यार्थियों की शिक्षा -

ग्राहम वालेस ने चार दशक पहले साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों तथा संस्मरणों की सहायता से, प्रख्यात सृजनात्मक चिंतकों की चिन्तन प्रक्रिया में निहित चरणों का अध्ययन किया। उन्होंने पता लगाया कि यद्यपि चिन्तन में वैयक्तिक भिन्नताएँ होती हैं तथापि इसका एक क्रमबद्ध स्वरूप भी होता है। उन्होंने पाँच चरणों: तैयारी, उद्भवन, प्रदीप्तिकरण, मूल्यांकन, तथा समीक्षा, का उल्लेख किया है।

1.तैयारी: चिन्तन करने वाला व्यक्ति, समस्याओं का रेखांकन करता है तथा समस्या-समाधान के लिए आवश्यक सामग्रियों तथा प्रदत्तों को एकत्र करता है। कई दिनों, सप्ताहों तथा महीनों तक सतत प्रयास के बावजूद समस्या का हल नहीं मिलता है। चिंतक जानबूझकर या अनिच्छा से अपने को इस प्रक्रिया से अलग कर लेता है। यहाँ से दूसरे चरण की शुरूआत होती है। यहाँ मानसिक विन्यास तथा कार्यात्मक जड़ता (थ्नदबजपवदंस पिगपलि) से व्यक्ति को दूर रहने की जरूरत होती है।

2.उद्भवन: जैसे ही व्यक्ति समस्या से हट जाता है तथा उसके बारे में नहीं सोचता है, त्यों ही, मानसिक सेट, प्रकार्यात्मक स्थिरता या अन्य विचार, जो सामाधान को बाधित करते हैं, कमजोर पड़ जाते हैं। शायद थकान या समस्या में अधिक तल्लीनता भी इस अवधि में कम हो जाती है। सृजात्मक चिन्तन में संलग्न अचेतन चिन्तन प्रक्रिया भी इस चरण में कार्य करने लगती है।

3.प्रदीप्ति करण: जब कहीं से कुछ नहीं होता, तो अंतर्दृष्टि के रूप में समस्या का संभावित समाधान दिखता है। प्रदीप्तन, आहा के साथ समाधान के एक अचानक विचार के रूप में चेतना में घटित होता है।

4.मूल्यांकन: जो समाधान प्राप्त होता है, उसकी उपयुक्तता की जाँच या परीक्षण किया जाता है। जो सूझ मिलती है वह अक्सर असंतोषदायी भी होती हैं, जिनमें परिमार्जन आवश्यक होता है।

5.पुनः समीक्षा: यदि हम संतोषदायी समाधान तक नहीं पहुँचा पाते तो पुनः समीक्षा (त्मअपेपवद) आवश्यक हो जाती है।

हमने सृजानात्मक चिन्तन के जिन चरणों का विवेचन किया है, उनसे इनके चरणों की एक सामान्य तस्वीर मिलती है, जो अत्यन्त सृजनशील या प्रतिभावान लोगों द्वारा, समस्या समाधान के लिए अपनायी जाती है। सृजनात्मक चिन्तन के अध्ययन का एक दूसरा दृष्टिकोण इस तरह के चिन्तन की समस्या-समाधान से भिन्नता पर ध्यान देता है।

एक शिक्षक होने के नाते, यह हमारा कर्तव्य है कि हम बच्चों के भीतर मौजूद सृजनात्मक क्षमताओं की पहचान कर उनका विकास करे। सृजनात्मकता का विकास करने के लिए हम कक्षा में कुछ तरीके अपना सकते हैं, जिसमें से कुछ इस प्रकार हैः-

- विचार व्यक्त करने की स्वंतत्रता देना।

- अपने विचारों का आकलन करना तथा उनमें से उपयोगी विचारों का चुनाव करना। जोखिम लेने की क्षमता का विकास करना।
- बालकों का खुद पर विश्वास बढ़ाना कि वे जो कर रहे हैं वह ठीक है तथा उचित है।
- बालकों की यह चुनने में मदद करना कि उन्हें क्या पंसद है?
- स्वयं सृजानात्मक सोच के साथ कार्य करके, बालकों के सामने आदर्श प्रस्तुत करना।
- कक्षा शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों से प्रायः पूछे कि ''क्या कोई इस समस्या का नया या भिन्न उत्तर देना चाहता है।'' इस प्रकार के उत्तरों को कक्षा चर्चा में शामिल करें।
- यदि कक्षा में विभिन्न विचार आ रहे हैं तो उनके आधार पर संवाद को प्रोत्साहित करें।
- कई बार ऐसे भी प्रदत्त कार्य दें जो मूल्यांकन का हिस्सा न हो बल्कि उनमें रचनात्मक अभिव्यक्ति की संभावना हो।

विद्यार्थियों में सृजनात्मक चिन्तन में संवर्धन का प्रयास कुछ युक्तिओं तथा उपकरणों का उपयोग करके किया जा सकता है। इनमें से प्रमुख हैं

संवेदनशीलता का प्रशिक्षण: इसके अंतर्गत भिन्न और नए तरीके से सोचने का अवसर दिया जाता है जैसे आप अपने घर के आस-पास कैसी ध्वनियाँ सुनते हैं? आप बादलों में क्या-क्या आकार देखते हैं।

प्रेक्षण: बच्चों को अपने आस-पास की चीजों को देखने प्रेक्षण करने तथा इन्हें लिखने के लिए प्रेरित करना।

शब्द प्रयोग: समान अक्षर से आरंभ होने वाले विभिन्न शब्दों से वाक्यों का निर्माण।

बहुल प्रयोग: विभिन्न वस्तुओं जैसे पेंसिल, कप, बल्ब, समाचार पत्र, इत्यादि के सामान्य तथा असामान्य उपयोगों की जिन्हें हम सोच सकते हैं, सूची बनाना।

कहानी लेखन: बच्चों को कुछ वाक्य देकर, उनसे कहानी पूरी करने को कहना या अलग ढंग से लिखने को कहना।

अन्वेषण: भोजन हेतु नया व्यंजन, संगीत उपकरण, कलम, स्टैंड, किताब पर चिह्न लगाने की कलम या दैनिक उपयोग की कोई चीज बनाना।

वर्गीकरण: विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और अवधारणों का वर्गीकरण।

1.7 सांवेगिक और व्यवहारजन्य समस्या से ग्रसित विद्यार्थी

कक्षा में प्रायः ऐसे भी विद्यार्थी होते हैं जो सांवेगिक और व्यवहार जन्य समस्याओं से ग्रस्त होते हैं, इन विद्यार्थियों का व्यवहार अपने हम उम्र साथियों से इस अर्थ में भिन्न होता है, कि वह अध्यापक का ध्यान आकृष्ट करते हैं। यह ध्यानाकर्षण कक्षा के लिए समस्या हो सकता है।

क्वे और पिटरसन (1987) ने छः प्रकार की प्रवृत्तियों को पहचाना है।

व्यवहार की असमान्यता वाले विद्यार्थी जैसे आक्रामक, तोड़ फोड़ करने वाले, शिक्षक और साथियों की अवहेलना करने वाले, असहयोगी प्रवृत्ति, कक्षा में बाधा डालने वाले विद्यार्थी। ऐसे विद्यार्थियों को अनेक बार उनके व्यवहार के लिए दंडित किया जाता है। ऐसे विद्यार्थियों को कक्षा में समायोजित करने के लिए उनकी बातों को टाल देना चाहिए। उनसे कक्षा के बाहर बात करनी चाहिए। उनके अभिभावकों से बात करनी चाहिए।

अतिसंवेदनशील - ऐसे विद्यार्थी जो अतिसंवेदनशील हैं , जो अति शर्मीले है, जिनमें अवसाद के लक्षण दिखते हैं, बहुत अस्थिर चित्त के हैं। इनका सामाजिक दायरा या संपर्क क्षेत्र बहुत छोटा होता है। वे आत्मघाती व्यवहार करते है। ऐसे विद्यार्थियों को समायोजित करने के लिए उनको कक्षा के समक्ष किसी प्रकार की टिप्पणी करने से बचें, उन्हें ऐसे कार्यों में संलग्न करें जिनसे उनका सामाजिक दायरा बढ़े।

अवधान और अपरिपक्वता की समस्या- ऐसे विद्यार्थी का किसी भी कार्य में ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता। ये काल्पनिक दुनिया में जीते हैं, व्यवस्थित नहीं हो पाते है, इनके लिए परामर्श तथा निर्देशन की आवश्यकता होती है। इन्हें कार्य को टुकड़ों में बांटकर दिया जाना चाहिए। (छोटे-छोटे चरणों में कार्य देने चाहिए) अत्यधिक बेचैन और अतिरिक्त दबाव- ऐसे विद्यार्थी किसी भी कार्य के विषय में आवश्यकता से अधिक तनाव लेते हैं, किसी भी कार्य को करने में घबराहट का अनुभव होता है।

सामाजिक दृष्टि से आक्रामक- इस श्रेणी में वे बच्चे आते है, जो बचपन से ही गैंग में में रहते हैं और मिलकर आक्रामक व्यवहार करते हैं।

अप्रत्याशित मनोवैज्ञानिक व्यवहार - ये अप्रत्याशित व्यवहार करतें है। जो प्रायः किसी मनोवैज्ञानिक समस्या का लक्षण होता है।

इन वर्गों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विद्यार्थी भी हो सकते हैं। इन विद्यार्थियों से अन्तःक्रिया के दौरान उपेक्षात्मक रवैया नहीं अपनाना चाहिए। इनके अभिभावकों से चर्चा और सलाह करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो उन्हें काउंसलर से मिलने की सलाह देनी चाहिए। दण्ड देने के बजाय दण्ड के औचित्य को स्पष्ट करना चाहिए। व्यवहार परिवर्तन के लिए इन विद्यार्थियों को ही अपने व्यवहार के मानक लिखने को कहना चाहिए। इनके कार्य को आवश्यकतानुसार कठिन और सरल करते रहना चाहिए। इन विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक रोगी के रूप में नहीं समझना चाहिए।

4.8.1 सामाजिक दृष्टि से अपवंचित विद्यार्थी: बाल श्रमिक

प्रायः आप घरेलू कार्यों, सड़क के किनारे सामान बेचते और खाने-पीने आदि के दुकानों पर कार्य करते हुए अनेक बच्चों को देखते होंगे। आपने कभी सोचा है कि इन बच्चों के लिए शिक्षा और बड़े होने के क्या मायने हैं? ऐसे बच्चों को बाल श्रमिक कहा जाता है। बाल श्रम एक सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण बाधा है। वैश्विक स्तर पर, कुल बाल श्रमिकों में से 50 प्रतिशत से अधिक भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका में है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अकेले भारत में ही 5 से 10 करोड़ के बीच बाल श्रमिक है। संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी फैक्ट्री,खनन कार्य या किसी जोखिम वाले काम में नहीं लगाया जा सकता।

किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक और शारीरिक श्रम करने वाले बाल श्रमिक कहलाते है। परन्तु 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे इतने बड़े नहीं होते कि भुगतान या मुनाफे के लिए लाभदायक आर्थिक गतिविधियों में भाग ले सके। इसलिए बाल श्रमिक 5 से 14 आयु वर्ग के आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने वाले बच्चे होते है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार पर संपन्न सम्मेलन में कहा गया है कि बच्चों के श्रम की व परिस्थितियां जहां उनका कार्य बच्चे के स्वास्थ्य एवं मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, या सामाजिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो, बाल श्रम की परिधि में आता है। वस्तुतः बाल श्रम का सबसे अंधकारमय पक्ष बाल श्रम से बच्चों पर पड़ने वाले कुप्रभाव है। यहाँ पर कुछ दुष्प्रभावों का उल्लेख किया जा रहा है-

- बाल मजदूरी के चलती बच्चों का नैसर्गिक,शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव विकास बाधित होता है। परिणामतया उनकी कार्य क्षमता का हास होता है।
- बालश्रम में संलग्नता के कारण उनकी औपचारिक शिक्षा बाधित हो जाती है। वस्तुतः यह कहा जाता है कि जो विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा से वंचित हैं वे किसी न किसी प्रकार के श्रम में संलग्न हैं।
- शिक्षा स्वास्थ्य एवं आवास की समस्या का सामना करने के कारण इन भावी जीवन जोखिम युक्त हो जाता है। खतरनाक उद्योंगो में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर तो कुप्रभाव पड़ता है।
- विभिन्न उद्योंगो में काम करने वाले बच्चों को अनेक प्रकार की बीमारियों और विकलांगता का सामना करना पड़ता है। दियासलाई तथा पटाखा बनाने वाले बच्चों को सांस की दिक्कत तथा भयानक रूप से जल जाने का खतरा होता है जबकि पत्थर खदान, स्लेट या कांच उद्योग में काम करने वाले बच्चे सिलकोसिस, धूल एवे ताप की बजह से दम घुट जाने तथा जल जाने के खतरे से दो चार होते है। हथकरघा उद्योग में फाइब्रोसिस तथा बाइसीनोसिस

तथा कालीन उद्योग में धूल एवं रेशों के कारण फेफडों की भयानक बीमारी गठिया तथा जोड़ के तनाव से बच्चों के प्रभावित होने की संभावनना होती है। ताँबा या पीतल उद्योग में काम करने वाले बच्चों को दमा भयंकर सिरदर्द क्षयरोग तथा गुब्बारा फैक्ट्री के बाल श्रमिकों को निमोनियां हार्टअटैक जैसी बीमारियां लग जाती है।

बाल श्रम के लिए उत्तरदायी कारण

भारत में बाल श्रम के लिए पारिवारिक गरीबी एक महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारक है. कुछ आँकड़े बताते है कि 18 से 58 वर्ष की आयु के (जो अधिकांशतः बच्चों के पालन पोषण का दायित्व निर्वहन करते है) लगभग 25 प्रतिशत लोग बेकार है। शेष जो रोजगार प्राप्त हैं उनमें से 92 प्रतिशत लोग असंगठित होकर क्षेत्र में काम करते है जहां न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों पर अमल नहीं होता। साथ ही पूरे वर्ष रोजगार की समस्या रहती है। गरीबी के इस परिवेश में बच्चे मजदूरी करने हेतु विवश हो जाते है। बाल मजदूरी के प्रोत्साहन में नियोक्ताओं का हित भी उत्तरदायी है . वस्तुतः बाल श्रमिक सस्ता और आज्ञाकारी श्रमिक होता है। जिसकी कोई संगठित क्षमता नहीं होती है।उसे डरा धमका कर बड़े लम्बे समय तक कम मजदूरी पर काम लिया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन व्यय कम करने की दृष्टि से नियोक्ता के लिए बाल श्रम लाभ का स्रोत्र है। बाल श्रम के लिए माता पिता की अशिक्षा, विद्यालय का भयप्रद वातावरण, अपव्यय, और अवरोधन भी महत्वपूर्ण है। कई बार विद्यालय का भय प्रद वातावरण उन्हें विद्यालय छोड़ने के लिए बाध्य कर देता है।एक अनुमान के मुताबिक कक्षा 1 में नामांकित होने वाले 100 बच्चों में से 40 ही कक्षा 5 तक पहुँच पाते है। कक्षा 8 तक तो यह संख्या मात्र 20 रह जाती है। जाहिर है विद्यालय छोड़ देने वाले ये सभी खेलने और पढ़ने की उम्र में बालश्रमिक बनकर परिवार के कमाऊं पूत बन जाते है। बाल श्रम के निवाराणार्थ बनाए गए अधिनियमों एवं प्रावधानों का कठोरतापूर्वक पालन न हो पाना भी इस समस्या के निरन्तर विकास का एक प्रभावी कारण है। सरकारी तथा गैर सरकारी तौर पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि माचिस तथा पटाखा बनाने वाली फैक्ट्रियों में विस्फोटक सामग्री कानून तथा फैक्ट्री कानून तथा श्रम कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। बाल श्रम के लिए हमारा जाती या वर्ग आधारित सामाजिक ढांचा, जिसमें प्रायः निम्न जाती या वर्ग आधारित सामाजिक ढाँचा जिसमें प्रायः निम्न जाती या वर्ग में जन्म लेने वाले बच्चों को मजदूरी विरासत में मिलती है, भी जिम्मेदार है शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव बुरी संगत पारिवारिक तनाव आदि बाल मजदूरी के अन्य प्रमुख कारण है।

बाल श्रमिकों की शिक्षा

शिक्षा के अधिकार कानून के उपरांत 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा मूल अधिकार है। इस दिशा में बाल श्रमिकों की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए सर्वप्रथम परिवार और समुदाय को इन बच्चों को बाल श्रम में शामिल होने से रोकना होगा।

नीतिगत स्तर पर नियोक्ताओं को इस प्रकार की श्रम नियुक्ति के लिए हतोत्साहित करना होगा। इसके उपरांत मुख्य धारा की शिक्षा में इन्हें शामिल करने के लिए सेतु पाठ्यक्रमों को प्रारंभ करना होगा जिससे इन्हें इनकी उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश दिलाया जा सकें। इन बच्चों के परिवेश को ध्यान में रखते हुए अधिगम गतिविधियों का विकास करना होगा। ऐसे बच्चे कई बार प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी होते हैं इसलिए इनके अभिभावकों से लगातार संपर्क बनाए रखना होगा। इन बच्चों को सीखाने के लिए इनके रोजमर्रा के कार्यानुभवों को माध्यम बनाना होगा। बच्चों की सुरक्षा हेतु कानून को लागू करने, बच्चों को काम से हटाकर ऐसे विशेष विद्यालयों में भेजना जहां उन्हें अनौपचारिक शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण के साथ साथ पोषक आहार मिले और छात्रवृत्ति उपलब्ध हों, का प्रयास करना होगा।

4.8.2 सामाजिक दृष्टि से अपवंचित विद्यार्थी: पथवासी बच्चे

पथवासी बच्चों को परिभाषित करते हुए यूनीसेफ (1985, 1992) ने तीन प्रमुख बिन्दुओं को महत्व दिया है–

- वे बच्चे जो गलियों पर कार्य करते हैं, लेकिन अपने परिवार के साथ रहते हैं।
- वे बच्चे जिनका परिवार तो है, लेकिन उन्हें इससे आवश्यक मदद नहीं मिलती।
- वे बच्चे जो कार्यात्मक रूप से परिवार और अभिभावक के बिना रहते हैं।

यूनीसेफ की ही अवधारणा को आधार बनाकर पथवासी बच्चे पर आधारित अंतरराष्ट्रीय अन्तः एन.जी.ओ. कार्यक्रम (1986) ने इन्हें इस प्रकार से परिभाषित किया है–

"एक पथवासी बच्चा वह लड़का या लड़की है जो अभी व्यस्क नहीं हुआ है और जिसके लिए गली अपने वृहत्तर अर्थ में, जो परित्यक्त स्थान और गैर निवास योग्य स्थानों को भी शामिल करता है, ही आवास और जीविकोपार्जन का साधन है जो किसी भी प्रकार के व्यस्क संरक्षण और सहयोग से वंचित है।" इसी प्रकार कासग्रोव (1990) ने इन्हें परिभाषित करते हुए कहा कि है कि 'पथवासी बच्चे ऐसे बच्चे हैं जो 18 वर्ष की उम्र से कम आयुवर्ग के हैं, जिनका व्यवहार सामान्य और सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार जैसा नहीं होता है, जिनकी विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार या परिवार जैसी किसी अन्य प्रकार के संस्था द्वारा नहीं होती है।" इन परिभाषाओं में पथवासी बच्चे की अवधारणा को सार्वभौमिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन परिभाषाओं में प्रयुक्त आधारों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि ये आधार संस्कृतिबद्ध हैं, न कि सार्वभौमिक। लस्क (1992) ने इस अवधारणा को पुनः एक नए वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत इन्होंने निम्न वर्ग बनाए– गली में रहने वाले परिवारों के बच्चे, बिना अभिवावक के बच्चे, परिवार में रहने वाले लेकिन गली में समय बिताने वाले बच्चे। आप्तेकर (1994) ने इन परिभाषाओं को चुनौती दी

और पथवासी बच्चे की अवाधारणा की व्याख्या एक प्रक्रिया के रूप में किया है, प्रक्रिया गली में प्रवेश और समय बिताने के साथ प्रारम्भ होती है और गली की संस्कृति में पूरी तरह से रम जाने पर समाप्त होती है। ये बच्चे गली में ही ज़्यादातर समय बिताते हैं और गली की गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। जीवन यापन गली की गतिविधियों में संलग्नता पर आधारित है। इन्हें किसी भी प्रकार का संरक्षण और सुरक्षा नहीं मिलती है।

प्रायः पथवासी बच्चों को 'परित्यक्त बच्चों' के रूप में देखा जाता है, लेकिन यह भी पाया गया है कि ये बच्चे परित्यक्त बच्चे न होकर ऐसे परिवार से सम्बन्धित हैं जहाँ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को 'कमाने' की ज़रूरत होती है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन बच्चों को जो कीमत चुकानी पड़ती है वह ही इनके अनुभवों को सामान्य ओर स्वीकार्य बचपन की अवधारणा से भिन्न बना देता है। ज्यादातर कार्यों में 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' की अवधारणा को परिभाषित करते हुए वस्तुनिष्ठता की कीमत पर उनके जीवन्त, निजी और वैयक्तिक अनुभवों को किनारे कर दिया गया है।बजाय अन्तःक्रियात्मक विश्लेषण करने के कार्यकरण प्रभाव के रूप में व्याख्या करते हुए, गरीबी, पारिवारिक जीवन की कठिनाइयों एवं जनसंख्या की अधिकता का परिणाम बता दिया गया है। जो कार्य इस स्तर से आगे बढ़े हैं, उन्होंने इन बच्चों के वर्गीकरण का प्रयास किया है। वर्गीकरण और परिभाषाओं के अन्तर्गत इन बच्चों के, इनके परिवार से सम्बन्ध के स्तर को और गली से इनके सम्बन्ध की प्रकृति को आधार बनाया गया। इन्हें एक 'व्यक्ति' विशेष के रूप में न देखकर एक विशेषण विशेष से जोड़कर देखा गया है। इनके 'समांगता' की मान्यता हमें उनके अनुभवों के सूक्ष्म विश्लेषण से वंचित कर देती है। कुछ अध्ययनों में इन्हें ऐसे समूह के रूप में देखा गया है जिनके मूल आवश्यकताओं जैसे भोजन, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य, से वंचित कर दिया गया है। स्पष्ट है कि पथवासी बच्चे को परिभाषित करने की तीन धाराएँ रही हैं– प्रथम के अन्तर्गत सामाजिक–जनांकीय आधारों पर गली में इनकी मौजूदगी को इनकी परिभाषा का आधार बनाया गया है। दूसरे प्रकार के प्रयास में परिवार और अन्य सामाजिक एजेंसियों से इनके विलगाव की प्रक्रिया को आधार बनाया गया है। इस प्रकार के प्रयासों ने इन बच्चों को मुख्यधारा से काटकर एक अलग वर्ग में रखा है। तीसरे प्रकार के वे प्रयास हैं जो हाल के वर्षों में हुए हैं, जिनके अन्तर्गत सबसे पहले अवधारणा विशेष पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हुए इसे 'सामाजिक सांस्कृतिक कारक निर्मित सम्प्रत्यय' माना गया है, और यह सवाल पूछा गया कि यह परिभाषा किसके लिए है? किसने बनाया है? और यह किसके पक्ष में कार्य कर रही है? इस धारा के अन्तर्गत आने वाले विद्वानों का मानना है कि पथवासी बच्चे की अवधारणा के अन्तर्गत इन बच्चों को आम बच्चों, व्यस्कों, परिवार और स्कूल जैसी अन्य सामाजिक संस्थाओं से विलग रूप में देखा जाता है। यह प्रवृत्ति इनके सामाजिक बहिष्करण को वैधता प्रदान करती है। वृहत्तर सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक प्रक्रिया जन्य अपवंचन, राज्य द्वारा मूलभूत सुविधाओं को प्रदान करने की

असफलता, एवं परिवार के द्वारा जीवन जीने की मूलभूत चुनौतियों से दैनिक सामना को विश्लेषण के दायरे से अलग कर देने पर उपरोक्त प्रकार के एकांगी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। एक शिक्षक के रूप में इन बच्चों के सन्दर्भ में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा:

- इन्हें 'अपराधी', 'भगोड़ा' या 'भुक्तभोगी' के रूप में देखने के बजाय एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहिए जो नाना प्रकार के वातावरण में सक्रियता के साथ सहभागिता करते है।
- ये बच्चे गलियों में रहते हुए समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान व्यक्तित्व का विकास करते हैं, सीखते हैं, चुनौतियों का सामना करते हैं और दायित्व स्वीकारते हैं। इन बच्चों के लिए गली जीवनानुभवों का महत्वपूर्ण हिस्सा है।
- इन बच्चों को हम मूल्यहीन और असामाजिक कह देते हैं, जबकि इनमें भी 'आत्म सम्मान' की इच्छा और सामाजिक संवेदना होती है।
- हमें ध्यान रखना होगा की पथवासी बच्चे की संज्ञा इन्हें केवल गली में भटकने वाले बच्चों के रूप में बाँध देती है और जीवन के अन्य पक्षों की उपेक्षा कर देती है. इन बच्चों के लिए कोई भी सुधारात्मक प्रयास इनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखकर नहीं किया जा सकता है।
- यदि इनकी छवि को नकारात्मक रूप में अतिरंजित किया जाएगा और दया भावना के साथ सहयोग का प्रयास हुआ उससे ये बच्चे समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के बजाय और भी कटते चले जाएंगे।
- तदनुभूति और तादात्मय के साथ इनकी ओर बढ़ने पर यह भी अपनी ऊर्जा सीखने की अपनी ललक के साथ आगे आएँगें।
- संज्ञानात्मक क्षमता की दृष्टि से ये बच्चे उतने ही क्षमतावान हैं जितने की अन्य सामान्य बच्चे। शिक्षा की प्रक्रिया में मुख्यधारा में लाने के लिए हमें इनके विकासात्मक सन्दर्भ को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप 'त्वरक' कार्यक्रमों का निर्माण करना होगा। यहाँ उल्लेखनीय है कि वास्तविक लक्ष्य उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में लाने तक सीमित नहीं है बल्कि समाज की मुख्यधारा में लाने का है।
- विपरीत परिस्थितियों में जीने की बाध्यता, प्रवसन, गरीबी और अपवंचन जनित सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया के बीच समाज के निम्नतम तबके से आनेवाले ये बच्चे भी अपने 'बाल–अधिकारों' के दावेदार है और एक शिक्षक के रूप में हमारा दायित्व हैं की हम मानव विविधता को ध्यान में रखते हुए सभी विद्यार्थियों को सीखने का गुणवत्ता पूर्ण अवसर उपलब्ध कराएँ।

1.9 सारांश

वैयक्तिक भिन्नता के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा, विलक्षण तथा अद्वितीय होता है। व्यक्तियों में पायी जाने वाली उन सभी भिन्नताओं तथा भेंदो को, जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करते

हुये एक व्यक्ति को अपने आप में एक अनूठा व्यक्ति बनाती हे, वैयक्तिक भिन्नताओं या भेदों का नाम दिया जा सकता है। विद्यार्थियों भिन्नता के अंतर्गत शरीर रचना, विशिष्ट योग्यताएँ, बुद्धि, रुचि, स्वभाव, उपलब्धि आदि की भिन्नता से विद्यार्थी के समस्त रूप की पहचान की जाती है। विद्यार्थियों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं के कारण हम किन्ही दो विद्यार्थियों को एक-दूसरे का प्रतिरूप नहीं कह सकते हैं। कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी की विविधता का सम्मान और समावेशन हो, इसके लिए एक शिक्षक के रूप में हमें अपने विद्यार्थियों को जानना चाहिए, स्वयं को पूर्वाग्रहों से मुक्त रखना चाहिए, समावेशी शिक्षणशास्त्रीय युक्तियों का प्रयोग करना चाहिए विद्यार्थियों की पहचान को स्वीकार करें। इसके अतिरिक्त हमने इस इकाई में विशिष्ट आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों के विषय में अध्ययन किया। आपने जाना की विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थी से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों से संबंधित किसी एक या अन्य व्यक्तित्व गुणों और विशेषताओं के संदर्भ में सामान्य या औसत बालकों से इस सीमा तक अलग और भिन्न होते है कि उनके शिक्षण और समायोजन के लिए विशेष प्रकार की देखभाल एवं शिक्षा-दीक्षा की जरुरत पड़ती है। संक्षेप में आपने विशिष्ट आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के प्रकार जैसे पिछड़ेपन से ग्रस्त विद्यार्थी, बाल अपराधी या सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा विद्यार्थी, दृष्टि दोषो से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी, श्रवण दोषों से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी, मांसपेशी एवं अस्थिदोषों से युक्त विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी, मानसिक रूप से विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी, अधिगम की दृष्टि से अक्षम या विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी, संवेगात्मक रूप से अशांत विद्यार्थी, प्रतिभाशाली/प्रतिभावान विद्यार्थी और रचनाशील/सृजनशील विद्यार्थी के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई सामाजिक दृष्टि से अपवंचित बच्चों जैसे बाल श्रमिक और पथवासी बच्चों के विषय में भी चर्चा की गयी। इस बात पर बल दिया गया की हर विद्यार्थी को ऐसे व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहिए जो नाना प्रकार के वातावरण में सक्रियता के साथ सहभागिता करते है और अपनी संभावनाओ का विकार करते हैं। शिक्षक का दायित्व है की वह इनके विकास की प्रक्रिया में हर संभव योगदान करे।

1.10 अभ्यास प्रश्न

- व्यक्तिगत भिन्नता के लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना कीजिए।
- पथवासी बच्चों की संकल्पना का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
- विशिष्ट विद्यार्थियों के वर्गीकरण की सूची प्रस्तुत कीजिए। प्रत्येक वर्ग की विशेषताओं पर भी प्रकाश डालिए।
- विशिष्ट क्षमता वाले विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए आप किन युक्तियों को अपनाएंगेऔर क्यों?

- उन शिक्षणशास्त्रीय उपागमों की चर्चा कीजिए जिनके द्वारा आप अपनी कक्षा में विविधता का समावेशन कर सकते हैं।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

- शर्मा, गणपतराम., व्यास, हरिशचन्द्र, (2013) अधिगम -शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी।
- गुप्ता, एस.पी., गुप्ता, अल्का. (2015) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धान्त एवं व्यवहार. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन
- मंगल, एस. के. (2015) शिक्षा मनोविज्ञान. दिल्ली: पी. एच. आय.: लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.।
- लाल एवं जोशी. (2008) शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी. मेरठ: आर. लाल. बुक डिपो।

निवेदन- विगत कुछ वर्षों से सेवारत शिक्षकों के लिए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम उथल पुथल के दौर से गुजरा है। इस संदर्भ में नयी पाठ्यचर्या को लागू करना और उसके अनुसार समय की सीमा के अन्तर्गत अध्येताओं को सामग्री उपलब्ध करवाना एक चुनौती भरा कार्य था। इस चुनौती को जिन लेखकों और संकलनकर्ताओं की मदद से सुगम किया गया, वे सब बधाई के पात्र हैं। प्रत्येक अध्ययन सामग्री में जिन मूल पुस्तकों का सहयोग लिया गया है, उनका यथासंभव संदर्भ ग्रन्थों के रूप में उल्लेख किया गया है। लेखक और संकलनकर्ता मूल ग्रन्थों के लेखकों के उद्यम और बौद्धिक सक्रियता का सम्मान करते हैं और इनके प्रति आभार ज्ञापित करते हैं। यदि यह ज्ञात होता है कि किसी मूल ग्रन्थ का नामोल्लेख रह गया है तो उसे भी हम साभार सम्मिलित करेंगे। पाठकों से अनुरोध है कि वे अपना फीडबैक उपलब्ध कराते रहे जिससे इस सामग्री को उत्तरोत्तर गुणवत्ता संपन्न किया जा सके।